इन प्रतीकात्मक कविताओं के विविध रंग हैं। इनमें स्वप्न का सृजन है जिनमें दुःस्वप्न भी शामिल हैं। यहाँ कुत्ते से वार्तालाप है, कीड़ों की भिनभिनाहट है और इंसानों की नजर से खुद को छिपाने की कोशिश करता आकाश है। समाज के ढोंग-पाखंड, निष्क्रियता, हताशा और ठहराव पर विक्षुब्ध टिप्पणी है जो मुखर नहीं है। 'वाइल्ड ग्रास' के बारे में लू शुन ने लिखा है- "धरती के भीतर तीव्र वेग से जो अग्नि-मंथन हो रहा है, उसका लावा जब सतह पर आयेगा, तो वह सभी जंगली घासों और गहराई से धँसे विष-वृक्षों को जलाकर खाक कर देगा, ताकि सड़ान्ध पैदा करने वाली कोई चीज बाकी न रह जाये।"

प्रकाशन

मूल्य : 30 रुपये
ISBN 81-87772-25-5

जंगली घास

लू शुन की गद्य कविताएँ

अनुवाद : दिगम्बर

जंगली घास

(लू शुन की गद्य कविताएँ)

अनुवाद

दिगम्बर

प्रथम हिन्दी संस्करण
जनवरी, 2014
संशोधित संस्करण : 2016

अनुवाद : दिगम्बर

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

मुद्रक:
प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स, ए -21
झिलमिल इन्डस्ट्रियल एरिया, शाहदरा, दिल्ली,

ISBN 81-87772-25-5

मूल्य: 30 रुपये

Translation of Wild Grass : Prose poetry by Lu Xun (Selected Work, Volume One published by Foreign languages Press, Beijing thired edition 1980.)

अनुक्रम

भूमिका

विश्व साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर लू शुन की गद्य कविताओं का संकलन पहली बार 1928 में *वाइल्ड ग्रास* नाम से प्रकाशित हुआ था। इनका लेखन काल सितम्बर 1924 से अप्रैल 1926 के बीच है। यह वही दौर था जब गणतंत्र सरकार, जो 1911 में डॉ. सुनयात सेन के नेतृत्व में स्थापित हुई थी, उसकी जगह राजनीति में युद्ध सरदारों और किंग वंश की वापसी होती है। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सर उठाती हैं और चीनी जनता का भारी दमन-उत्पीड़न शुरू होता है। जनता की पीड़ा के साथ गहरी सहानुभूति, शासक वर्गों के प्रति गहरा आक्रोश, समाज में व्याप्त उदासीनता और निष्क्रियता से उत्पन्न विक्षोभ तथा भविष्य के प्रति उत्कट् आशा के इन्हीं मिले-जुले मनोभावों की झलक इन गद्य कविताओं में दिखायी देती है।

इन गद्य कविताओं में साम्राज्यवाद और उत्तरी युद्ध सरदारों का दमनचक्र और उनके खिलाफ जन प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है। उस दौर में साहित्य को जिस कठोर सेंसरशिप से गुजरना पड़ता था, उसके कारण इनमें रची-बसी राजनीतिक अन्तर्दृष्टि प्रत्यक्ष और बेबाक नहीं है, बल्कि अमूर्त और सांकेतिक शैली में अभिव्यक्त हुई है। इस सांकेतिकता को न पकड़ने के कारण ही कई आलोचक इन कविताओं में हताशा-निराशा की झलक देखते हैं तथा लू शुन के लेखों और कहानियों की तुलना में इन्हें कमजोर ठहराते हैं। इसका जवाब इस संग्रह की "आशा" शीर्षक गद्य कविता में देखा जा सकता है। इसमें निराशा के वस्तुगत कारणों की, आशा-निराशा के अन्तर्द्वन्द्व को, दमन की तुलना में कमजोर प्रतिरोध को और झूठी आशा के खोखलेपन को अभिव्यंजित करते हुए अन्त में लू शुन निर्णायक रूप से कहते हैं कि "निराशा भी आशा की तरह खोखली है।"

ऊपर-ऊपर देखने पर इन कविताओं में निराशा, एकाकीपन और भयावहता की झलक मिल सकती है, लेकिन दरअसल इनके माध्यम से चीनी समाज के ढोंग-पाखण्ड, उदासीनता, अकर्मण्यता, पराजय बोध, गुलामी के प्रति समर्पण, हताशा और ठहराव पर क्षोभपूर्ण और तीक्ष्ण कटाक्ष किया गया है।

अपने समय की कड़वी सच्चाइयों से परिपूर्ण इन कविताओं के मर्म तक पहुँचने के लिए 1924-26 की सामाजिक और राजनीतिक सच्चाइयों की सामान्य समझ जरूरी है। संग्रह की पहली कविता "पतझड़ की रात" में छोटे गुलाबी फूल देश के समकालीन युवा वर्ग के प्रतीक हैं जो उस दौर के पतझड़नुमा वातावरण की तुलना में भले ही मुलायम और दुर्बल हैं, लेकिन वे भविष्य के प्रति आशावाद और नये सपनों के वाहक हैं। आकाश, चाँद और तारे उत्पीड़क शक्तियों के प्रतीक हैं। निराशाजनक चुप्पी के माहौल में निशाचरों की

चीख-पुकार भी एक प्रतिवाद उत्पन्न करती है। ऐसे ही माहौल के सम्बन्ध में लू शुन ने एक जगह लिखा है कि, "यह उस दुष्ट उल्लू की सच्ची कर्कश आवाज की तरह है, जिसकी एक चीख ही लोगों को हिला कर रख देती है।" खजूर का पेड़ अपनी बात पर कायम रहने, विनम्रता, परिपक्वता और निस्वार्थता का प्रतीक है। यहाँ भी निराशा में आशा की झलक है-- "जब खूनी लाल रंग के गारडेनिया खिलेंगे, तब छोटे गुलाबी फूलों के सपने की तरह ही खजूर के पेड़ भी अपनी टहनियों पर चमकीले पल्लव का सपना देखेंगे और मैं फिर से आधी रात की हँसी सुनूँगा।"

"सुन्दर नरक जो गायब हो गया था" कविता का सन्दर्भ गणतंत्र के छलावा सावित होने से है, जिसके बारे में लू शुन ने किसी अन्य रचना में कहा है--

"मुझे लगता है कि चीन का गणतंत्र लम्बे समय से गायब है।

मुझे लगता है कि 1911 की क्रान्ति के पहले मैं गुलाम हुआ करता था। क्रान्ति के थोड़े ही दिनों बाद मुझे गुलामों द्वारा छला गया और मैं उनका गुलाम हो गया।

मुझे लगता है कि गणतंत्र की कई प्रथाएँ गणतंत्र की दुश्मन हैं।

मुझे लगता है कि हर चीज सिरे से शुरू की जानी चाहिए।"

"ऐसा योद्धा" में उन विद्वानों का बखान है जो बिना हथियार के योद्धा हैं, जो आताताइयों के भाले के आगे घुटने टेक देते हैं। "रक्त के धुंधले धब्बों के बीच" 18 मार्च को युद्ध सरदार दुरुई द्वारा छात्रों के शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर गोली चलाये जाने की घटना से सम्बन्धित है। नयी पीढ़ी के ऊपर लू शुन के भरोसे का इजहार इन पंक्तियों में हुआ है-- "जो कुछ भी जीवित है, जो कुछ भी मृत है, साथ ही जो जन्म ले रहा है और जिसे जन्म लेना है, उन सबको वह समझता है और वह दुबारा शुरुआत करने को उठ खड़ा होगा"

जंगली घास की कविताओं का मूल कथ्य समग्रता में एक अन्धकार में डूबे समाज की राजनीतिक ऐतिहासिक आलोचना है। इसमें अंधेरी रात, नरक और रेगिस्तान जैसे पतित और बर्बर राजनीतिक ताकतों के बिम्ब हैं, वहीं जनता की उदासीनता और जड़ता तथा परिवर्तन की शक्तियों को एकजुट न कर पाने की बेबसी का इजहार भी है, लेकिन इनमें भविष्य के प्रति भरपूर उम्मीद भी है। ये कविताएँ अपनी प्रतीकात्मकता के कारण भी काफी विवादास्पद रहीं हैं। लेकिन इन कविताओं में लू शुन की गहन वैज्ञानिक दृष्टि और प्रखर काव्य संवेदना भी है जो आशा की झलक दिखाती है और पाठकों में यह उम्मीद जगाती है कि पतझड़ भले ही आतताइयों का हो, बसन्त हमारा होगा।" वाइल्ड ग्रास संकलन के बारे में उन्होंने लिखा था कि "धरती के भीतर तीव्र वेग से जो अग्नि-मंथन हो रहा है, उसका लावा जब सतह पर आयेगा, तो वह सभी जंगली घासों और गहराई से धँसे विष-वृक्षों को जलाकर खाक कर देगा, ताकि सड़ांध पैदा करने वाली कोई चीज बची न रहा जाय।"

पतझड़ की रात

मेरे घर के पिछवाड़े की दीवार से उस पार आपको दो पेड़ दिखायी देंगे। एक खजूर का पेड़ है और दूसरा भी खजूर का पेड़ है।

उनके ऊपर रात्रिकालीन आकाश अनूठा और ऊँचा है। मैंने कभी इतना अनूठा और उत्तुंग आकाश नहीं देखा। लगता है कि वह आदमियों की दुनिया छोड़ देना चाहता है, ताकि जब लोग सिर उठायें तो उसे देख ही न पायें। हालाँकि इस क्षण यह पूरी तरह नीला है और इसकी सितारेनुमा आँखें भावशून्य टिमटिमा रही हैं। एक बुझी-बुझी सी हँसी इसके होठों के इर्द-गिर्द खेल रही है। एक ऐसी हँसी जो काफी मानीखेज लगती है और पाले की मोटी चादर से हमारे अहाते के जंगली पौधों को ढँक रही है।

मुझे पता नहीं कि इन पौधों को क्या कहते हैं, अमूमन किन नामों से ये जाने जाते हैं। मुझे याद है कि उनमें से एक पर छोटे-छोटे गुलाबी फूल खिलते हैं और ये फूल भी कायम हैं, हालाँकि ये पहले से कहीं ज्यादा छोटे हैं। जाड़े की रात की ठंडी हवा में काँपते हुए ये सपना देख रहे हैं, बसन्त आने का सपना, पतझड़ आने का सपना, जब कोई दुबला-पतला कवि उनकी अन्तिम पंखुडियों पर अपने आँसू ढलकायेगा जो कहता है कि पतझड़ आयेगा, जाड़ा आयेगा, लेकिन बसन्त भी जरूर आयेगा, जब तितलियाँ इधर-उधर मँडरायेंगी और समस्त मधुमक्खियाँ बसन्त के गीत गुनगुनायेंगी। फिर छोटे से गुलाबी फूल मुस्काते हैं, हालाँकि ठण्ड से उनमें विशादमय लाली आ गयी है और वे अभी भी काँप रहे हैं।

जहाँ तक खजूर के पेड़ों की बात है, उनकी सारी पत्तियाँ मुड़ गयी हैं। पहले एक या दो लड़के खजूर तोड़कर गिराने के लिए आये, जबकि बाकी लोग चूक गये। लेकिन अब एक भी खजूर नहीं बचा और पेड़ की पत्तियाँ भी गायब हो गयीं। गुलाबी फूलों ने पतझड़ के बाद बसन्त आने का जो सपना देखा है, उसके बारे में इन्हें मालूम है और ये इस सपने से भी वाकिफ हैं कि पतझड़ में जो पत्तियाँ गिर गयीं वे बसन्त में फिर उग आयेंगी। भले ही उन्होंने सारी पत्तियाँ गवाँ दी और अब केवल शाखाएँ ही बची हुई हैं, लेकिन अब वे फलों और पल्लवों के बोझ से झुकी नहीं हैं। तभी तो वे आराम से लहरा रही हैं। हालाँकि अभी भी कुछ टहनियाँ मुरझाकर लटक रही हैं और खजूर तोड़ने के दौरान छड़ी से उनकी छाल पर जो घाव लगे हैं वे धीरे-धीरे भर रहे हैं, जबकि जो टहनियाँ लोहे की छड़ की तरह सीधी और लम्बी हैं, वे आकाश की ओर तनी उसमें छेद करती महसूस

हो रही हैं, तभी तो वह व्याकुल होकर आँखे मटमटा रहा है। वे पूर्णिमा की चाँदनी को भी छेद रही हैं जिससे वह बुझी-बुझी और बेचैन लग रही है।

कातर भाव से आँखे मटमटाते हुए आकाश और नीला, और नीला होता जा रहा है, मानों वह चाँद को पीछे छोड़ते हुए आदमियों की दुनिया से भागना चाहता है और खजूर के पेड़ों से आँख चुराना चाहता है। मगर चाँद भी पूरब में खुद को घुमाये हुए है, जबकि अभी तक मौन और लोहे की छड़ की तरह दृढ़ नंगी टहनियाँ अनूठे और उत्तुंग आकाश में छेद कर के उस पर जानलेवा घाव करने पर अमादा हैं, चाहे वह अपनी सभी सम्मोहक आँखों से जितने ही तरीके से आँखे झपका ले।

एक खूँखार निशाचर पंछी चीखता हुआ गुजरा।

अचानक मैंने आधी रात का ठहाका सुना। आवाज घुटी-घुटी थी, मानो सोये हुए लोगों को जगाया नहीं हो। हालाँकि हवा में वह आवाज अभी भी गूँज रही है। आधी रात का समय और आस-पास कोई नहीं। एकाएक मुझे लगा की हँसने वाला मैं ही हो सकता हूँ और एकाएक इस हँसी के मारे मैं अपने कमरे में वापस चला आया। एकाएक मैंने लैम्प की बत्ती उकसा कर तेज की।

पिछली खिड़की के शीशे से धक-पक की आवाज हुई जहाँ कीड़ों का दल खुद को बदहवासी में खिड़की के शीशे से टकरा रहा था। अभी-अभी उनमें से कुछ कीड़े खिड़की की दरार से अन्दर घुस आये। जैसे ही वे अन्दर आये वे लैम्प की चिमनी से टकराकर धक-पक की आवाज करने लगे। एक तो चिमनी के ऊपरी हिस्से से लहराते हुए लैम्प की लौ पर जा गिरा और मुझे भ्रम हुआ कि यह लौ असली है या नहीं। दो या तीन कीड़े हाँफते हुए जाकर पेपर शेड पर बैठ गये। पेपर शेड अभी नया ही है, कल रात ही लगाया था। झक्क सफेद कागज को लहरदार मोड़कर बनाये गये इस शेड के एक कोने में छींटे मारकर खूनी लाल गारडेनिया बनाया हुआ था।

जब खूनी लाल रंग के गारडेनिया खिलेंगे तब छोटे गुलाबी फूलों के सपने की तरह ही खजूर के पेड़ भी अपनी टहनियों पर चमकीले पल्लव का सपना देखेंगे और मैं फिर से आधी रात की हँसी सुनूँगा। मैं झटके से इन विचारों की श्रृंखला को बंद करता हूँ और पेपर शेड पर बैठे छोटे से हरे कीड़े की ओर देखता हूँ। सूरजमुखी के बीज की तरह उनका सिर बड़ा और पूँछ छोटी है। वे गेहूँ के एक दाने से आधे आकार के हैं और वे सब के सब मोहक, भावपूर्ण हरे रंग के हैं।

मैं जम्हाई लेता हूँ, एक सिगरेट जलाता हूँ, इन हरे और सूक्ष्म नायकों को लैम्प के आगे मौन श्रृद्धान्जली अर्पित करते हुए धुँआ छोड़ता हूँ।

15 सितम्बर 1924

परछाईं का अवकाश ग्रहण

जब आप इतने अधिक समय तक सोते रहेंगे कि आप को समय का अता-पता ही न चले, तब आपकी परछाई इन शब्दों में अवकाश लेने आयेगी--

"कोई चीज है जिसके चलते मैं स्वर्ग से नफरत करती हूँ, मैं वहाँ जाना नहीं चाहती। कोई चीज है जिसके चलते मैं नरक से नफरत करती हूँ, मैं वहाँ जाना नहीं चाहती। कोई चीज है आपके भविष्य की सुनहरी दुनिया में जिससे मैं नफरत करती हूँ, मैं वहाँ नहीं जाना चाहती।

"हालाँकि यह आप ही हो, जिससे मैं नफरत करती हूँ।"

"दोस्त, अब और तुम्हारा अनुसरण नहीं करूँगी, मैं रुकना नहीं चाहती।

"मैं नहीं चाहती!

"ओह, नहीं! मैं नहीं चाहती। इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं शून्य में भटकूँ।

मैं तो केवल एक परछाई हूँ। मैं तुम्हें त्याग दूँगी और अन्धेरे में डूब जाऊँगी। फिर वह अन्धेरा हमें निगल लेगा और रोशनी भी मुझे गायब कर देगी।

"लेकिन मैं रोशनी और छाया के बीच भटकना नहीं चाहती, इससे तो कहीं अच्छा कि मैं अन्धेरे में डूब जाऊँ।

"फिर भी अब तक मैं रोशनी और छाया के बीच ही मँडरा रही हूँ, अनिश्चय में कि अभी साँझ हुई या भोर। मैं तो बस अपने धूसर-भूरे हाथ उठा सकती हूँ, जैसे शराब की एक प्याली खत्म करनी हो। जिस समय मुझे समय का अता-पता नहीं रह जायेगा, तब मैं दूर तक अकेली ही चली जाऊँगी।

"हाय! अगर अभी साँझ हुई है, तो काली रात मुझे पक्के तौर पर घेर लेगी या मैं दिन के उजाले में लुप्त कर दी जाऊँगी अगर अभी भोर हुई है।

"दोस्त, समय अभी हाथ में है।

"मैं शून्यता में भटकने के लिए अन्धेरे में प्रवेश करने जा रही हूँ।

"अभी भी आप मुझसे कोई उपहार की उम्मीद रखते हैं? मेरे पास देने के लिए है ही क्या? अगर आप जिद करेंगे तो आपको वही अन्धेरा और शून्यता हासिल होगी। लेकिन मैं चाहूँगी कि केवल अन्धेरा ही मिले जो आपके दिन के उजाले में गायब हो सके। मैं चाहूँगी कि यह केवल शून्यता हो जो आपके हृदय को कभी भी काबू में नहीं रखेगी।

"मैं यही चाहती हूँ, दोस्त।

"दूर, बहुत दूर, एक ऐसे अन्धेरे में जाना जिससे न केवल तुम्हें, बल्कि दूसरी परछाइयों को भी निकाल बाहर किया जाय। वहाँ सिर्फ मैं रहूँगी अन्धेरे में डूबी हुई। वह दुनिया पूरी तरह मेरी होगी।"

24 सितम्बर 1924

भिखमँगे

मैं एक पुरानी-धुरानी, ऊँची दीवार के बगल से, बारीक धूल में पैर घिसटते हुए गुजर रहा हूँ। कई दूसरे लोग भी अकेले टहल रहे हैं। हवा का एक झोंका आया और दीवार के ऊपर से झाँकती ऊँची-ऊँची पेड़ों की डालियाँ, जिनके पत्ते अभी झड़े नहीं हैं, मेरे सिर के ऊपर हिलने लगीं।

हवा का एक झोंका आया और हर जगह धूल ही धूल।

एक बच्चा मुझसे भीख माँग रहा है। वह दूसरे लोगों की तरह ही धारीदार कपड़े पहने हुए है और देखने से दुःखी भी नहीं लगता, फिर भी वह रास्ता रोककर मेरे आगे सिर झुकाता है और मेरे पीछे-पीछे चलता हुआ रिरियाता है।

मैं उसकी आवाज, उसके तौर-तरीके को नापसन्द करता हूँ। उसमें उदासी का न होना मेरे अन्दर घृणा पैदा करता है, जैसे यह कोई चाल हो। जिस तरह वह मेरा पीछा करते हुए रिरिया रहा है, उससे मेरे मन में जुगुप्सा पैदा हो रही है।

मैं चलता रहा। कई दूसरे लोग भी अकेले टहल रहे हैं। हवा का एक झोंका आया और हर जगह धूल ही धूल।

एक बच्चा मुझसे भीख माँग रहा है। वह दूसरे लोगों की तरह ही धारीदार कपड़े पहने हुए है और देखने से दुःखी नहीं लगता, लेकिन वह गूँगा है। वह गूँगे की तरह मेरी ओर हाथ फैलाता है।

मैं उसके गूँगेपन के इस दिखावे को नापसन्द करता हूँ। हो सकता है कि वह गूँगा न हो, यह केवल भीख माँगने का उसका जरिया हो सकता है।

मैं उसे भीख नहीं देता। मुझे भीख देने की इच्छा नहीं है। मैं भीख देने वालों से परे हूँ। उसके लिए मेरे मन में जुगुप्सा, सन्देह और घृणा है।

मैं एक ढही हुई मिट्टी की दीवार के बगल से गुजर रहा हूँ। बीच की जगह में टूटी हुई ईंटों का ढेर लगा है और दीवार के आगे कुछ नहीं है। हवा का एक झोंका आता है, मेरे धारीदार चोगे के भीतर पतझड़ की सिहरन भर जाती है और हर जगह धूल ही धूल है।

मुझे उत्सुकता होती है कि भीख माँगने के लिए मुझे क्या तरीका अपनाना चाहिए। मुझे कैसी आवाज में बोलना चाहिए? अगर मैं गूँगा होने का दिखावा करूँ तो मुझे गूँगापन कैसे प्रदर्शित करना चाहिए?

कई दूसरे लोग अकेले टहल रहे हैं।

मुझे भीख नहीं मिलेगी, भीख देने की इच्छा तक हासिल नहीं होगी। जो लोग खुद को भीख देने वालों से परे मानते हैं उनकी जुगुप्सा, सन्देह और घृणा ही मिलेगी मुझे। मैं निष्क्रियता और चुप्पी ओढ़े हुए भीख मागूँगा...

अन्ततः मुझे शून्यता हासिल होगी।

हवा का एक झोंका आता है और हर जगह धूल ही धूल। कई दूसरे लोग अकेले टहल रहे हैं।

धूल, धूल....

....

धूल........

24 सितम्बर, 1924

बदला

वह अपने आपको ईश्वर का पुत्र, यानी इजराइलवासियों का राजा मानता था, इसीलिए उसे सूली पर चढ़ाया जाना है।

सैनिको ने उसे बैंगनी रंग का चोगा पहनाया, उसे काँटों का ताज पहनने को बाध्य किया और उसे खुश होने की शुभकामना दी। फिर उन लोगों ने उसके माथे पर सरकण्डे से मारा, उस पर थूका और उसके आगे घुटने टेके। जब उन लोगों ने उसका मजाक उड़ा लिया तब उसके बैंगनी चोगा को उतारा और उसे पहले की तरह ही अपने कपड़े पहनने के लिए छोड़ दिया।

देखिये किस तरह वे उसके माथे पर मार रहे हैं, उस पर थूक रहे हैं, उसके आगे घुटने टेक रहे हैं।

वह गंधरस मिली शराब नहीं पियेगा। वह चाहता है कि ईश्वर के पुत्र के प्रति इजराइलवासियों के बर्ताव का रस लेते हुए वह संयम रखे और दीर्घकाल तक उनके भविष्य पर तरस खाये, लेकिन उनके वर्तमान से घृणा करे।

हर कहीं घृणा है, दयनीय और निकृष्ट।

हथौड़े की चोट सुनाई दे रही है, कीलें उसकी हथेलियों को छेद रही हैं। लेकिन यह सच्चाई कि ये दयनीय जीव अपने ईश्वर के पुत्र को सूली पर चढ़ा रहे हैं उसकी पीड़ा को हल्का कर रही है। हथौड़े की चोट सुनाई दे रही है और कीलें उसके पैर के तलवों को छेद रही हैं, एक हड्डी को तोड़ते हुए, जिससे दर्द उसके हृदय और मज्जा को चीरता हुआ उमड़ रहा है। लेकिन यह सच्चाई कि ये दयनीय जीव अपने ईश्वर के पुत्र को सूली पर चढ़ा रहे हैं, उसकी पीड़ा में उसे दिलासा दे रही है।

सूली को ऊपर उठा दिया गया। वह हवा में लटक रहा है।

उसने गंधरस मिली शराब नहीं पी। वह चाहता है कि ईश्वर के पुत्र के प्रति इजराइलवासियों के बर्ताव का स्वाद चखते हुए वह संयम बरते और दीर्घकाल तक उनके भविष्य पर तरस खाये और उनके वर्तमान से घृणा करे।

सभी राहगीर उसका अपमान करते हैं और उसकी लानत मलामत करते हैं। मुख्य पुरोहित और धर्माशास्त्री भी उसका मजाक उड़ाते हैं। दो चोर जो उसी के बगल में सूली पर चढ़ाये गये, वे भी उसकी खिल्ली उड़ाते हैं।

जो लोग उसी के साथ सूली पर चढ़ाये जा रहे हैं, वे भी...

सभी ओर घृणा है, दयनीय और निकृष्ट।

अपने हाथों और पैरों में हो रही पीड़ा के बीच वह उन दयनीय जीवों के दुःख का रस ले रहा है, जो अपने ईश्वर के पुत्र को सूली चढ़ा रहे हैं और उन निकृष्ट जीवों के आनन्द का भी मजा ले रहा है, जो ईश्वर के पुत्र को सूली चढ़ा रहे हैं और जो जानते हैं कि ईश्वर का पुत्र अब मरने ही वाला है। अचानक उसकी टूटी हुई हड्डी की पीड़ा तेज होकर उसके हृदय और मज्जा में समा जाती है, जो उसे असीम हर्षोन्माद और करुणा के साथ मदमस्त कर देती है।

करुणा और निकृष्टता की पीड़ा से उसका पेट फूलने लगता है।

पूरी पृथ्वी के ऊपर अन्धेरा ही अन्धेरा है।

"एलोई, एलोई, लामा सबाचथानी? (मेरे ईश्वर, मेरे ईश्वर, तुमने मुझे क्यों त्याग दिया?)

ईश्वर ने उसे त्याग दिया और आखिरकार अब वह इनसान का पुत्र है। लेकिन इजराइलवासी इनसान के पुत्र को भी सूली चढ़ा रहे हैं।

जिन लोगों से सबसे ज्यादा खून और गन्दगी की दुर्गन्ध आती है, वे ईश्वर के बेटे को सूली चढ़ाने वाले लोग नहीं, बल्कि वे आदमी के बेटे को सूली चढ़ाने वाले लोग हैं।

20 दिसम्बर 1924,

आशा

मेरा हृदय असाधारण रूप से अकेला है।

लेकिन मेरा हृदय बहुत ही शान्त है-- प्रेम और घृणा, खुशी और उदासी, रंग और आवाज से शून्य।

शायद मैं बूढ़ा हो रहा हूँ! क्या यह सच नहीं कि मेरे बाल सफेद हो रहे हैं? क्या यह सच नहीं कि मेरे हाथ काँप रहे हैं? तब तो मेरी आत्मा के हाथ भी काँप रहे होंगे। निश्चय ही मेरी आत्मा के बाल भी सफेद हो रहे होंगे।

लेकिन कई सालों से यही स्थिति बनी हुई है।

उससे पहले एक बार मेरा हृदय रक्तरंजित गीतों, खून और लोहा, आग और भावावेश, पुनरुत्थान और प्रतिशोध से छलछला गया था। फिर अचानक उस समय मेरा हृदय खाली हो गया, जब कभी मैंने जानबूझकर इसे निरर्थक और खुद को धोखा देने वाली आशा से भरा। आशा, आशा... मैंने खालीपन में अँधेरी रात के हमले से खुद को बचाने के लिए इस आशा की ढाल का सहारा लिया, हालाँकि इस ढाल के पीछे भी अँधेरी रात और खालीपन ही था। लेकिन फिर भी मैंने धीरे-धीरे अपनी जवानी बर्बाद की।

निश्चय ही, मैं जानता था कि मेरी जवानी नष्ट हो चुकी है। लेकिन मैं सोचता था कि मुझसे बाहर अभी भी जवानी का अस्तित्व है... तारे और चाँदनी रात, निर्जीव पड़ी तितलियाँ, अँधेरे में खिले फूल, उल्लू का मनहूस अपसकुन, बुलबुल का रक्तिम रुदन, बेवजह हँसी, प्रेम-नृत्य... भले ही यह उदासी और अनिश्चितता भरी जवानी रही हो, लेकिन फिर भी यह जवानी थी।

लेकिन आज यह इतनी अकेली क्यों है? इसलिए तो नहीं कि मुझसे बाहर भी जो जवानी है, वह नष्ट हो चुकी है और दुनिया के सभी नौजवान लोग बूढ़े हो गये हैं?

मुझे खालीपन में अँधेरी रात के साथ अकेले ही हाथापाई करनी होगी।

सान्दोर पेरोकी (1823-49) की कविता *आशा का गीत* सुनकर मैंने आशा की ढाल उठाकर रख दी।

"आशा क्या है? एक वेश्या!
सबको सुभाती, वह खुद को समर्पित करती है सबको,
जब तक कि आप एक कीमती खजाना गँवा नहीं देते
अपनी जवानी... तब वह त्याग देती है आपको।"

पचहत्तर साल बीत गये, जब यह महान गीतकार और हँगरीवासी देशभक्त अपनी

मातृभूमि के लिए लड़ते हुए कज्जाकों के भाले का शिकार हुआ। उसकी मौत दुःखद है लेकिन उससे भी दुःखद है कि उसकी कविता अभी मरी नहीं है।

लेकिन इतना दयनीय है जीवन कि पेरोकी जैसा साहसी और दृढ़निश्चयी आदमी भी आखिरकार अँधेरी राह के आगे ठिठक जाता है और पीछे मुड़कर सुदूर पूर्व की ओर निहारने लगता है।

"निराशा भी आशा की तरह ही खोखली है।"

अगर फिर भी मुझे इस निस्सारता में जीना ही है जो न प्रकाश है, न अन्धेरा, तो मैं उस उदासी और अनिश्चितता भरी जवानी की माँग करूँगा जो नष्ट हो गयी है, बावजूद इसके कि यह हमसे बाहर है। क्योंकि ज्योंही हमसे बाहर की जवानी गायब हो जायेगी, मेरा अपना बूढ़ापा भी मुरझा जायेगा।

लेकिन अब तो न तारे हैं, न चाँदनी रात, न निर्जीव पड़ी तितलियाँ, न बेवजह हँसी, न प्रेम-नृत्य।

युवा लोग बहुत ही शान्त हैं।

इसलिए खालीपन में अँधेरी रात के साथ मुझे अकेले ही हाथापाई करनी होगी। यदि मैं अपने से बाहर की जवानी को नहीं ढूँढ पाया, तो मुझे अपने ही बूढ़ापे में अन्तिम बार उछल-कूद मचानी होगी। लेकिन अँधेरी रात कहाँ है? अब तो न तारे हैं, न ही चाँदनी रात, न बेवजह हँसी, न प्रेम-नृत्य। युवा लोग बहुत ही शान्त हैं और हमारे आगे कोई वास्तविक अँधेरी रात भी नहीं है।

निराशा भी आशा की तरह ही खोखली है।

नव वर्ष, 1925

बर्फ

दक्षिण की बारिश कभी भी जमकर ठण्डे चमकदार बर्फ के फाहों में नहीं बदलती। जिन लोगों ने दुनिया देखी है वे इसे नीरस मानते हैं, क्या बारिश भी इसे दुर्भाग्य समझती है? चांगजियांग (यांग्त्से) नदी से दक्षिण का इलाका बहुत ही तर और मनोहर है, जैसे बसन्त का पहला अकथ संकेत या तंदुरुस्ती से दीप्त किसी लड़की का खिला यौवन। उजाड़ बर्फीले इलाके में कमेलिया के रक्ताभ फूल हरे और सुनहरे रंगों के साथ घुलीमिली, आलूचे के फूलों की सफेद मंजरी, शीतकालीन आलूचे के घण्टीनुमा फूल और बर्फ के नीचे छिपे हुए ठंडे हरे बीज। तितलियाँ वहाँ बिल्कुल नहीं हैं और मुझे ठीक से याद नहीं कि मधुमक्खियाँ कमेलिया के फूलों और आलूचे की मंजरी से शहद इकट्ठा करने आती भी हैं या नहीं। लेकिन अपनी आँखों के आगे मैं देख सकता हूँ बर्फीले उजाड़ में शीतकालीन फूलों पर मँडराती मधुमक्खियाँ... मैं सुन सकता हूँ उनकी भनभनाहट और उनका गुँजन।

बर्फ का बुद्ध बनाने के लिए इकट्ठा हुए सात या आठ बच्चे, अदरख की कोंपलों जैसी अपनी छोटी-छोटी लाल उँगलियों को अपनी साँसों से सेंक रहे हैं। जब वे सफल नहीं हुए, तो उनमें से किसी के पिता उनकी मदद करने आये। बुद्ध की ऊँचाई बच्चों से अधिक है और हालाँकि यह सेब के आकार का एक ढेर है जो कद्दू भी हो सकता है या बुद्ध भी, लेकिन यह सफेद और चमकदार सुन्दरता लिये हुए है। अपनी नमी से गुँथी यह पूरी छवि चमक और टिमटिमा रही है। बच्चे फल की गुठली से उसकी आँख और अपनी माँ के टूटे हुए सिंगारदान के टुकड़े से होंठ बनाते हैं। तो इस तरह बन गये आदरणीय बुद्ध। चमकदार आँखों और लाल होंठों वाले बुद्ध बर्फ के मैदान में खड़े हैं।

अगले दिन कुछ बच्चे उसे देखने आये। उसके आगे ताली बजाते हुए वे अपना सिर हिलाते और हँसते हैं। बुद्ध वहाँ अकेले बैठे हैं। धूप भरा दिन उनकी चमड़ी पिघला देता है। लेकिन ठंडी रात उस पर एक नयी परत चढ़ा देती है और यह अपारदर्शी स्फटिक में बदल जाता है। कुछ दिन और धूप खिलने पर इसको पहचान पाना मुश्किल हो जाता है और उसके चेहरे पर चिपका सिंगारदान का टुकड़ा गायब हो जाता है।

लेकिन उत्तर में गिरने वाले बर्फ के फाहे अन्तिम समय तक रेत या चूरा जैसे ही रहते हैं और जमते नहीं, चाहे वे छत पर बिखरे हों या जमीन पर या घास पर। घर में जलते चूल्हे की गर्मी ने बर्फ को पिघला दिया। जो बाकी बचे रहे वे खुले आकाश से उठने वाले बवंडर के साथ बेतहाशा ऊपर उठते हैं और सूरज की धूप में ऐसे चमकते हैं, मानों लपट

के इर्दगिर्द घना कोहरा। वे तब तक चक्कर खाते और ऊपर उठते रहते हैं, जब तक कि सारा आकाश ढक नहीं जाता और जब वे चक्कर लगाते ऊपर उठते हैं तो पूरा आकाश टिमटिमाने लगता है।

असीम उजाड़ में स्वर्ग के रूखे तहखाने में चमचमाती, सर्पिल गति से नाचती यह प्रेतात्मा बारिश का भूत है।

18 जनवरी 1925

पतंग

बीजिंग की सर्दी मुझे हताश और निराश कर देती है-- जमीन पर बर्फ की मोटी परत और स्वच्छ नीले आकाश की ओर बढ़ती ठूँठ पेड़ों की बदरंग साँसे, हालाँकि कुछ ही दूरी पर उड़ती एक-दो पतंगे।

हमारे यहाँ पतंग का मौसम बसन्त की शुरुआत में आता है। अब आप पवनचक्कियों की सनसनाहट सुनते हैं और सिर उठाकर ऊपर देखते हैं तो आपको कोई भूरी केकड़ेनुमा पतंग या कोई हल्के नीले रंग की कनखजूरेनुमा पतंग दिखायी देती है। या वहाँ कोई अकेली चौकोर पतंग भी हो सकती है, जो बिना पूँछ के, बहुत ही कम ऊँचाई पर उड़ रही हो और बहुत ही अकेली और उदास दिख रही हो। इस मौसम में हालाँकि जमीन पर खड़े विलो के पेड़ों में नयी कोपलें फूटने लगती हैं और अगाते पहाड़ी आडुओं पर कलियाँ आ जाती हैं। आकाश में बच्चों के मनमौजी करतब के साथ मिलकर ये सब बसन्त को खुशनुमा बना देते हैं। अभी मैं कहाँ हूँ? चारों ओर मनहूस सर्दी का साम्राज्य है, जबकि बहुत पहले भूल चुके मेरे गाँव का बहुत पहले गुजर चुका बसन्त यहाँ उत्तरी आकाश पर हिचकोले खा रहा है।

वैसे मुझे पतंग उड़ाना कभी पसन्द नहीं आया। पतंग उड़ाना तो दूर, वास्तव में मैं इसे निकम्मे बच्चों का खिलवाड़ मानते हुए नापसन्द करता था। मेरा छोटा भाई इससे ठीक उलटा सोचता था। उस समय वह दस साल का था, अक्सर बीमार रहता था और एकदम दुबला-पतला था, लेकिन पतंग उड़ाने में उसे बहुत ही मजा आता था। पतंग खरीदने में असमर्थ और उड़ाने पर मेरी तरफ से मनाही के चलते वह घंटों बाहर खड़ा रहता, उसके छोटे-छोटे होंट लालसा में खुले होते और वह भावविभोर आकाश की ओर निहारता रहता। अगर दूर कोई केकड़ेनुमा पतंग कटकर गिरती तो वह दुःख प्रकट करते हुए बुदबुदाता, जब दो चौकोर पतंगों की उलझी हुई पेंच सुलझ जाती तो वह खुशी से उछल पड़ता। पर सब मुझे बेहूदा और घिनौना लगता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि वह काफी देर से मुझे दिखायी नहीं दे रहा था। कुछ देर पहले वह घर के पीछे एक बाँस की छड़ी उठाते दिखायी दिया था। मेरे मन में अचानक आया कि मामला क्या है। मैं छोटे से सुनसान गोदाम की ओर लपका और सचमुच दरवाजा खोलते ही उसे धूल और कबाड़ के बीच पाया। वह एक चौड़ी मेज के पास एक स्टूल पर बैठा हुआ था। मुझे देखते ही वह असमंजस में खड़ा हो गया। उसके चेहरे से हवाई उड़ गयी। मेज के ऊपर एक तितलीनुमा पतंग का बाँस का ढाँचा पड़ा हुआ था, जिस पर अभी

कागज नहीं चिपकाया गया था। तितली की आँख बनाने के लिए दो कागज के टुकड़े काटकर स्टूल पर रखे हुये था। जिन्हें सुन्दर बनाने के लिए वह उन पर लाल कागज लगा रहा था। यह काम लगभग पूरा हो गया था। उसकी गुप्त कार्रवाइयों का पता लगाने पर मैं खुश था, लेकिन मुझे इस बात का गुस्सा आया कि वह मेरे साथ इतनी देर से छल कर रहा था, हालाँकि वह पूरे मनोयोग और मेहनत से निकम्मे बच्चों का बेकार खिलौना बनाने में जुटा हुआ था। मैंने पतंग का ढाँचा जब्त कर लिया और उसकी एक कमानी तोड़ दी फिर उसकी आँख बनाने के लिए जो कागज तैयार किया था, उसे जमीन पर गिराकर मसल दिया। वह मुझसे छोटा और कमजोर था, इसलिए जाहिर है कि मेरी जीत होनी ही थी। फिर मैं उसे उस छोटे कमरे में हताश छोड़कर बाहर निकल आया। उसके बाद उसने क्या किया इसका मुझे न तो पता चला और न ही मैंने उसकी परवाह की।

लेकिन अन्ततः मुझे इसका प्रतिफल मिला, जब हम दोनों को अलग हुए काफी समय हो गया था और मैं अधेड़ हो गया था। दुर्भाग्य से मैंने बच्चों के बारे में एक विदेशी किताब पढ़ी, जिससे मैंने पहली बार यह जाना कि खेलना बच्चों का सर्वोत्तम कार्यकलाप है और खिलौनें उनके लिए एक सुन्दर फरिश्ता। अचानक बचपन की वह क्रूरता, जिसे मैं बीस सालों से भूल चुका था, मेरे दिमाग पर छा गयी और उसी हवा में मेरा दिल भारी होने और डूबने लगा।

मेरा दिल टूटा नहीं, बस वह डूबता गया, डूबता गया।

मैंने सोचा कि कैसे मैं इसकी भरपाई कर सकता हूँ-- उसे पतंग दूँ, उसे उड़ाने की इजाजत दूँ, उससे विनती करूँ कि वह पतंग उड़ाये और खुद भी उसके साथ उड़ाऊँ। हम चिल्लाएँ, दौड़ें और हँसें! लेकिन इस समय तक तो मेरी तरह वह भी मूँछ-दाढ़ी वाला हो गया था।

मैंने इसकी भरपाई करने का एक दूसरा उपाय भी सोचा-- जा कर उससे माफी माँगूँ और उससे यह सुनने के लिए खड़ा रहूँ कि, "इसमें आपका कोई दोष नहीं है।" तब निश्चय ही मेरा दिल हल्का हो जायेगा। हाँ, ऐसा करना व्यावहारिक होगा। और वह दिन भी आया, जब हम दोनों मिले। जीवन की कठिनाइयों ने हमारे चेहरे पर निशान छोड़ दिये थे और हमारा मन भारी था। हमने बचपन की घटनाओं पर बातचीत शुरू की और मैंने उसे उस दिन का वाकया सुनाते हुए अपनी गलती मान ली कि उन दिनों मैं एक लापरवाह बच्चा था। मैंने सोचा कि वह कहेगा, "लेकिन मैं इसमें आपकी गलती नहीं मानता।" तब मैं समझता कि मुझे अपनी गलती के लिए माफ कर दिया गया और मेरा मन हल्का हो जाता।

"क्या सचमुच ऐसा हुआ था?" वह अविश्वास भाव से मुस्कुराया, जैसे वह किसी और से जुड़ी हुई कोई कहानी सुन रहा हो। वह घटना उसके दिमाग से पूरी तरह उतर चुकी थी।

बात पूरी तरह भूली जा चुकी थी। मन में कोई कटुता थी ही नहीं। ऐसे में भला माफी की क्या बात? जब कटुता का भाव न हो, तो माफी झूठ है।

अब मेरे लिए क्या उम्मीद बची है? मेरा मन हमेशा भारी रहेगा।

अब मेरे गाँव का बसन्त फिर उस अनजान इलाके की हवा में है। यह मुझे बहुत पीछे छूट चुके बचपन की ओर ले जा रहा है और अपने साथ एक अकथ उदासी ला रहा है। अच्छा होता कि मैं उस त्रासद सर्दी में ही पड़ा रहता। यहाँ चारों ओर सर्दी का साम्राज्य है और इस समय भी अपनी कठोरता और ठंडेपन में मुझे डुबो रहा है।

24 जनवरी 1925

अच्छी कहानी

चिमनी की लौ धीरे-धीरे मद्धिम होती गयी, जो इस बात का संकेत था कि उसमें अब ज्यादा तेल नहीं बचा है और तेल भी कोई अच्छी किस्म का नहीं, क्योंकि उसने अपने धुँए से चिमनी को पहले ही काला कर दिया था। उसमें हर तरफ दरार पड़ी हुई थी और सिगरेट का धुँआ मेरे चारों ओर मंडरा रहा था। बहुत ही उबाऊ, अंधेरी रात थी।

मैंने आँखे बंद कर ली और अपनी कुर्सी पर पीछे की ओर झुक गया। *नवलेखक की डायरी* (तंग वंश के समय शू जियान (659-729) और अन्य लेखकों की रचनाएँ) अपने हाथों में लिए उसे घुटनों पर टिकाये हुए था।

और उँघाई की इसी हालत में मैंने एक अच्छी कहानी की कल्पना की।

यह एक बड़ी प्यारी, मोहक और मनोहर कहानी थी। कई सुन्दर लोग और सुन्दर चीजें आकाश में बादल के चित्रपट की तरह घुल-मिल रहे थे, जो असंख्य उल्काओं की तरह इधर से उधर उड़ रहे थे, फिर भी अनन्त में समाते चले जा रहे थे।

ऐसा लगता था जैसे मैं प्राचीन काल में किसी विराट जलमार्ग पर एक छोटी सी नाव खेने का स्मरण कर रहा हूँ। दोनों किनारों पर आसमानी लहरों में मोटे पेड़ों और छोटे धान के पौधों, जंगली फूलों, मुर्गों, कुओं, झाड़ियों और सूखे पेड़ों, फूस के झोपड़ों और मन्दिरों, मठों, किसानों और देहाती औरतों, सूखने के लिए फैलाये गये कपड़ों, मठवासियों, नारियल के रेसे से बने लबादों, बाँस की खपची से बनी टोपियों, आसमान, बादलों और बाँसों की झुरमुट की परछाइयाँ उभर रही हैं। हर बार चप्पू चलाने पर ये सूर्य की झिलमिलाहट से उलझ जाते तथा पानी के भीतर मछली और सेवार में घुलमिल जाते और सब एक साथ डोलने लगते थे। फिर परछाइयाँ और वस्तुएँ काँपती और छितर जाती, फैलती और विलीन हो जाती और लुप्त होने से पहले एक बार फिर सिकुड़ती और अपने मूल रूप के समीप आ जाती। हर परछाई का खाका धुँधला था क्योंकि गर्मी के मौसम का बादल सूरज की रोशनी से झब्बेदार हो गया था, जो पारे की लपटों की तरह छितरा जाता था। ऐसी थी वह नदी जिससे होकर मैं गुजरा।

और जिस कहानी की मैंने कल्पना की वह भी ऐसी ही थी। पानी में नीले आकाश की परछाई एक पृष्ठभूमि की तरह थी, हर चीज आपस में घुलीमिली, एक-दूसरे से गुँथी हुई, लगातार गतिमान, लगातार विस्तृत होती, इसलिए उसके किसी ओर-छोर को मैं देख नहीं पा रहा था।

नदी के किनारे-किनारे विलो के सूखे पेड़ों के नीचे जो गुलाबैरा के पौधे इधर-उधर छितराये हुए हैं उन्हें शायद देहाती लड़कियों ने लगाया होगा। सुन्दर गहरे लाल और बहुरंगे लाल फूल पानी पर तैरते हुए अचानक छितरा जाते हैं लेकिन उनमें सुगंध नहीं होती। फूस के झोपड़े, कुत्ते, मन्दिर, देहाती लड़कियाँ, बादल... भी तैर रहे थे। सुन्दर गाढ़े रंग का हर एक फूल भी लहरों के लाल मुलायम घेरे में पसरा हुआ था। ये घेरे कुत्तों से अन्तर्गुम्फित थे, कुत्ते सफेद बादलों से और सफेद बादल देहाती लड़कियों से... झिलमिलाहट में वे फिर एक-दूसरे के नजदीक आ जाते। लेकिन बहुरंगे लाल फूलों की परछाई तो टूट चुकी थी और मन्दिरों, देहाती लड़कियों, कुत्तों, फूस की झोपड़ियों और बादलों के साथ गुँथ जाने के लिए खींचा-तानी कर रही थी।

मैंने जिस कहानी की कल्पना की थी, अब वह पहले से अधिक साफ, अधिक प्यारी, खुशनुमा, मनमोहक और सुस्पष्ट हो गयी। स्वच्छ आकाश के ऊपर असंख्य सुन्दर लोग और सुन्दर चीजें थीं। मैंने उन सबको देखा और उन सबको पहचाना।

मैं उन्हें और अधिक ध्यान से देखने वाला था...

लेकिन जैसे ही मैं उन्हें और अधिक ध्यान से देखता, बादल के चित्रपट को देखने के लिए आँखें खोलते ही उनमें चकाचौंध और जलन होने लगी, जैसे किसी ने पानी में बड़ा-सा पत्थर फेंक दिया हो और ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं, जिनमें सारी छवि टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गयी। मैंने अपनी किताब पर ध्यान दिये बिना ही, अँगड़ाई ली जो फिसलकर फर्श पर गिर गयी थी। मेरी आँखों के आगे अभी भी कुछ इन्द्रधनुषी रंग और बिखरी-हुई परछाइयाँ मंडरा रही थीं।

सचमुच मैं इस अच्छी कहानी को पसन्द करता हूँ। हालाँकि इसकी कुछ बिखरी-बिखरी परछाइयाँ अभी भी बची हुई हैं, लेकिन मैं उन्हें पकड़ना चाहता था, उन्हें पूरा करना और अमर कर देना चाहता था। मैंने किताब को किनारे सरकाया, आगे की ओर झुका कलम उठायी। लेकिन अब उसका थोड़ा भी प्रतिबिम्ब बचा नहीं था। जो कुछ मैं देख पा रहा था, वह थी चिमनी की मद्धिम लौ। अब मैं उस छोटी सी नाव में नहीं था।

लेकिन उस उबाऊ और अँधेरी रात में एक सुन्दर कहानी की कल्पना करना मुझे आज भी याद है।

24 फरवरी 1925

राहगीर

समय : कोई शाम

स्थान : कोई भी

पात्र

बूढ़ा : लगभग सत्तर साल की उम्र, दाढ़ी-बाल सफेद, काला चोगा।

लड़की : उम्र लगभग दस साल, सुनहरे बाल, काली आँखे, काले सफेद चेक का गाउन।

राहगीर : तीस-चालीस के बीच उम्र, थका और चिड़चिड़ा, दहकती नजरों से ताकता, काली मूँछ और उसके बाल, फटी-पुरानी काली जैकेट और पजामा, कन्धे पर झोला, अपने ही बराबर लम्बी बाँस की लाठी के सहारे झुका।

पूरब की ओर कुछ पेड़ और खंडहर; पश्चिम की ओर एक उपेक्षित कब्रगाह; दोनों के बीच एक धुँधली पगडंडी, छोटी सी मिट्टी की झोपड़ी जिसका रुख इस पगडंडी की तरफ है और दरवाजा खुला है। दरवाजे के बगल में सूखे पेड़ का एक ठूँठ है।

(लड़की उस ठूँठ से उतरने में बूढ़े की मदद करने जा रही है।)

बूढ़ा : ए बच्ची! रुक क्यों गयी?

लड़की : (पूरब की ओर देखते हुए) कोई इधर आ रहा है। देखो!

बूढ़ा : कोई बात नहीं। मुझे अन्दर ले चलो। सूरज डूबने को है।

लड़की : मैं... एक नजर देखना चाहती हूँ।

बूढ़ा : कैसी बच्ची है! रोज तो स्वर्ग, धरती और हवा को देखती है, यही काफी नहीं? देखने के लिए है ही क्या। फिर भी किसी को आते देखना चाहती हो। सूरज डूबने के समय आने वाला, तुम्हारा कोई भला नहीं करेगा... हमें अन्दर चलना चाहिए।

लड़की : लेकिन वह काफी नजदीक आ गया है। अरे, ये तो भिखमंगा है।

बूढ़ा : भिखमंगा? यहाँ क्या करने आयेगा!

(राहगीर पूरब की झाड़ियों से बाहर आता है और एक पल को ठिठककर धीरे-धीरे बूढ़े की ओर बढ़ने लगता है।)

राहगीर : शुभ संध्या, साहब।

बूढ़ा : शुक्रिया, शुभ संध्या।

राहगीर : साहब, क्या मैं हिम्मत करके एक गिलास पानी माँग सकता हूँ? चलते-चलते थक गया, प्यास लगी है और यहाँ कोई सोता या कुआँ नहीं है।

बूढ़ा : हाँ-हाँ, कोई बात नहीं। बैठो-बैठो (लड़की से) बच्ची थोड़ा पानी ले आओ। प्याला धो लेना।

(लड़की चुपचाप झोपड़ी के अन्दर पानी लेने चली जाती है।)

बूढ़ा : बैठ जाओ, राही। तुम्हारा नाम क्या है?

राहगीर : मेरा नाम? मुझे नहीं मालूम। जहाँ तक मुझे याद है, मेरे आगे-पीछे कभी कोई नहीं रहा, इसलिए मैं अपना असली नाम नहीं जानता। राह चलते लोग मुझे कभी कुछ तो कभी कुछ कहकर बुलाते हैं, जिसके जो मन में आये। लेकिन मुझे उनमें से एक भी नाम याद नहीं, क्योंकि किसी ने भी मुझे एक ही नाम से दोबारा नहीं बुलाया।

बूढ़ा : अच्छा चलो, तुम कहाँ के रहने वाले हो?

राहगीर : (हिचकते हुए) मुझे नहीं पाता। जबसे मुझे होश है, मैं इसी तरह भटकता रहा हूँ।

बूढ़ा : ठीक है, तो क्या जान सकता हूँ कि जा कहाँ रहे हो?

राहगीर : हाँ, क्यों नहीं। बात ये है कि मैं यह भी नहीं जानता। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने काफी लम्बी दूरी तय की है और इस वक्त यहाँ हूँ। मैं इस तरफ (पश्चिम की ओर इशारा करते हुए) जाऊँगा, आगे की ओर!

(लड़की एक लकड़ी के प्याले में पानी लेकर सावधानी से आती है और उसे पकड़ा देती है।)

राहगीर : (प्याला लेते हुए) शुक्रिया प्यारी बच्ची। (वह दो घूँट में ही सारा पानी पीकर प्याला लौटा देता है।) मेहरबानी प्यारी बच्ची। ऐसे भले लोग मुश्किल से ही मिलते हैं। बहुत-बहुत शुक्रिया बेटी।

बूढ़ा : इतना शुक्रगुजार होने की जरूरत नहीं है। इससे आपको कोई लाभ नहीं।

राहगीर : नहीं, इससे मुझे कोई लाभ नहीं। लेकिन अब मुझे काफी सुकून मिला। अब मैं आगे बढ़ सकता हूँ। आप तो यहाँ काफी समय से रहते हैं न हुजूर। क्या बता सकते हैं कि आगे कैसी जगह है?

बूढ़ा : आगे? आगे कब्रें हैं।

राहगीर : (चौंकते हुए) कब्रें!

लड़की : नहीं, नहीं, नहीं! उधर जंगली गुलाब और लिली के पौधे भी काफी हैं। मैं अक्सर वहाँ खेलने और फूलों को देखने जाती हूँ।

राहगीर : (पश्चिम की ओर देखकर मुस्कुराता है) हाँ, वहाँ ढेर सारे जंगली गुलाब

और लिली के पौधे हैं; मैंने भी कई बार उन्हें देखकर मजा लिया है, लेकिन वहाँ तो कब्रें हैं। (बूढ़े से) हुजूर, कब्रगाह के आगे क्या है?

बूढ़ा : कब्रगाह के आगे? मुझे नहीं पता। मैं उससे आगे कभी नहीं गया।

राहगीर : तुमको पता नहीं!

लड़की : मुझे भी पता नहीं।

बूढ़ा : मुझे सिर्फ दक्षिण, उत्तर और पूरब के बारे में पता है जिधर से तुम आ रहे हो। उन इलाकों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। और वे इलाके तुम्हारे जैसे आदमी के लिए ज्यादा अच्छे हैं। मेरे कहने का बुरा मत मानना, तुम पहले ही इतने थके हुए हो कि तुम्हारा वापस जाना ही अच्छा रहेगा, क्योंकि चलते रहे तो तुम अपना सफर पूरा कर मंजिल पर नहीं पहुँच पाओगे।

राहगीर : मैं कभी मंजिल तक नहीं पहुँच पाऊँगा?... (वह इस बात पर विचार करता है और चल पड़ता है।) नामुमकिन। मुझे आगे बढ़ना होगा। अगर पीछे गया तो मुझे कोई ऐसी जगह नहीं मिलेगी जहाँ नामी-गिरामी लोग न हों, कोई जगह नहीं जहाँ जमींदार न हों, जहाँ बेदखली और कैद न हो, जहाँ बनावटी हँसी और दिखावे के आँसू न हों। मुझे इन सबसे नफरत है। मैं पीछे नहीं जाऊँगा।

बूढ़ा : तुम गलत भी हो सकते हो। शायद तुम्हारी दिल से निकले आँसुओं से भी भेंट हो, सच्ची हमदर्दी हासिल हो।

राहगीर : मुझे दिल से निकले आँसुओं की कोई हसरत नहीं। मैं उनकी हमदर्दी नहीं चाहता।

बूढ़ा : इस हालत में (सिर हिलाते हुए) तुम्हें आगे ही जाना होगा।

राहगीर : हाँ, मुझे आगे ही जाना होगा। इसके अलावा, कोई आवाज है जो मुझे उकसा रही है और मुझे बुला रही है, ताकि मैं ठहर न जाऊँ। मुश्किल यह है कि मेरे पाँव में छाले पड़े हैं और वे लहूलुहान हो गये हैं। (वह एक पैर उठाकर बूढ़े को दिखाता है।) मेरे शरीर में ज्यादा खून नहीं बचा। मुझे कुछ पीने की जरूरत है। लेकिन कहाँ मिलेगा? और मैं किसी का खून पीना भी नहीं चाहता। मुझे पानी पीकर ही इसकी भरपाई करनी होगी। रास्ते में पानी तो हर जगह मिल जाता है। मुझे इसकी कोई कमी महसूस नहीं हुई। मगर मेरी ताकत बहती जा रही है क्योंकि मेरे खून में पानी काफी ज्यादा हो गया है। और आज मैं इसीलिए ज्यादा दूर नहीं चल पाया, क्योंकि रास्ते में मुझे पानी नहीं मिला।

बूढ़ा : हो सकता है कि यह वजह न रही हो। सूरज डूब चला। मेरे ख्याल से तुम्हें मेरी तरह ही आराम करना चाहिए।

राहगीर : मगर आगे से आने वाली आवाज मुझे चलते रहने को कहा ही है।

बूढ़ा : मुझे मालूम है।

राहगीर : आपको मालूम है? आप उस आवाज को जानते हैं?

बूढ़ा : हाँ। लगता है, पहले वह मुझे भी इसी तरह पुकार चुकी है।

राहगीर : वही आवाज तो मुझे बुला रही है?

बूढ़ा : यह तो मैं नहीं कह सकता। इसने मुझे कई-कई बार बुलाया, लेकिन मैंने इस पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए यहाँ रुक गया, इतना ही मुझे याद है।

राहगीर : अरे, आपने उस पर ध्यान नहीं दिया... (वह इस बात पर थोड़ी देर सोचता है, चौंकता है और आवाज को सुनने लगता है।) नहीं! मुझे जाना ही होगा। मैं आराम नहीं कर सकता। अफसोस की मेरे पाँव बुरी तरह घायल हैं। (वह चलने को तैयार हो जाता है।)

लड़की : ये लो! (वह उसे एक कपड़े का टुकड़ा देती है।) इसे पैरों में बाँध लो।

राहगीर : शुक्रिया, बेटी। (वह कपड़ा ले लेता है।) सचमुच... सचमुच ऐसी हमदर्दी मुश्किल से मिलती है। इसके सहारे मैं काफी दूर तक चल सकता हूँ। (वह कंकड़ों पर बैठकर उस कपड़े को घुटने पर बाँधने की कोशिश करता है।) नहीं, इससे काम नहीं चलेगा। (वह अपने पैरों से जूझता है।) इसे वापस ले लो लड़की। इससे गाँठ नहीं बंध पायेगी। लेकिन यह तुम्हारी सच्ची हमदर्दी है। मैं कैसे तुम्हारा शुक्रिया अदा करूँ।

बूढ़ा : इसे शुक्रिया अदा करने की कोई जरूरत नहीं। इससे कोई फायदा नहीं।

राहगीर : नहीं, इससे मेरा कोई भला नहीं होगा। लेकिन यह मेरे लिए सबसे बढ़िया भीख है। देखिए, मेरे पास इससे बेहतर कोई चीज है?

बूढ़ा : इस बात को इतना संजीदगी से लेने की कोई जरूरत नहीं।

राहगीर : पता है। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ। मुझे अपने इस रवैये से डर लगता है। अगर मुझे भीख लेनी होती तो मैं गिद्ध की तरह किसी लाश के इन्तजार में टकटकी लगाये ऊपर मंडराता रहता और खुद अपनी आँखों से उसका नाश होते देखने को लालायित रहता। या मैं उसके नाश के लिए उसके अलावा सभी को, खुद अपने आप को भी चुनौती देता। क्योंकि मैं भी इस लायक हूँ। लेकिन मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है। अगर होती भी तो मैं उसका एहसान नहीं चाहता क्योंकि एहसान कोई नहीं चाहता। यही तरीका सबसे सही है। (लड़की से) कपड़े का टुकड़ा बिलकुल बढ़िया है, लेकिन यह बहुत छोटा है। इसलिए मैं इसे वापस दे रहा हूँ।

लड़की : (सिर हिलाते हुए उसके झोले की ओर इशारा करती है।) मुझे नहीं चाहिए! उसे रख लो।

राहगीर : (मुस्कान जैसा भाव लाते हुए) ओ हो, क्योंकि मैंने इसे छू दिया?

लड़की : (सिर हिलाते हुए उसके झोले की ओर इशारा करती है) इसे उस झोले में रख लो, मजे के लिए।

राहगीर : (हताशा में पीछे हटते हुए) लेकिन मैं इसे पीठ पर लाद कर कैसे चलूँगा?

बूढ़ा : तुम आराम नहीं करते, इसलिए कुछ ढो नहीं पाते। थोड़ी देर आराम कर लो तो ठीक हो जाओगे।

राहगीर : यह ठीक है, आराम... (वह सोचता है और चौंकते हुए कहता है) नहीं मैं नहीं करूँगा! जाना ही ठीक है।

बूढ़ा : तुम आराम नहीं करना चाहते?

राहगीर : चाहता हूँ।

बूढ़ा : ठीक है, तो थोड़ा आराम कर लो।

राहगीर : लेकिन मैं नहीं कर सकता।

बूढ़ा : तुम अभी भी सोचते हो कि तुम्हारा जाना ही ठीक है?

राहगीर : हाँ, मेरे लिए जाना ही बेहतर है।

बूढ़ा : बहुत अच्छा, तब तो एकदम चले जाओ।

राहगीर : (अँगड़ाई लेते हुए) अच्छा तो मैं विदा लेता हूँ। मैं आपका बहुत एहसानमंद हूँ। (लड़की से) मैं इसे वापस देता हूँ बच्ची, इसे ले लो।

(डर कर लड़की अपना हाथ पीछे खींचती है और झोपड़ी में जाकर छुपना चाहती है।)

बूढ़ा : ले लो, अगर ये इतना ही भारी है, तो इसे कब्रगाह में कभी भी फेंक सकते हो।

लड़की : (आगे बढ़कर) नहीं, ये ठीक नहीं होगा।

राहगीर : नहीं, ये सही नहीं होगा।

बूढ़ा : ठीक है, तो इसे किसी जंगली गुलाब या लिली के पौधे पर टाँग देना।

लड़की : (हाथ से ताली बजाते हुए हँसती है) बहुत अच्छा!

राहगीर : ओह

(एक पल के लिए चुप्पी छा जाती है।)

बूढ़ा : अच्छा, तो विदा। मेहरबानी करके अपना ख्याल रखना। (वह खड़ा होता है और लड़की की ओर मुड़ता है।) बच्ची, मुझे भीतर ले चलो। देखो, सूरज डूब गया। (वह दरवाजे की ओर मुड़ता है।)

राहगीर : दोनों लोगों का शुक्रिया। तुम्हें सुख-चैन नसीब हो। (वह कुछ कदम चलता है, गहरी सोच में डूबा, फिर तेजी से चल पड़ता है।) मगर नहीं, मुझे जाना ही होगा।

मेरा जाना ही बेहतर है। (हाथ उठाते हुए, वह मजबूत कदमों से पश्चिम की ओर चल पड़ता है।)

(लड़की बूढ़े आदमी को सहारा देकर झोपड़ी में ले जाती है और दरवाजा बंद कर लेती है। राहगीर लँगड़ाते हुए बीहड़ की ओर बढ़ता है और रात उसका पीछा करती है।)

2 मार्च 1925

बुझी हुई आग

मैंने सपना देखा कि मैं बर्फ के पहाड़ पर दौड़ रहा हूँ।

यह एक विराट, उत्तुंग पर्वत था, जो ऊपर बर्फीले आकाश को घूर रहा था और आकाश में जमे हुए बादलों की बाढ़ आयी हुई थी। पहाड़ की तलहटी में बर्फ का जंगल था जिसकी पत्तियाँ और टहनियाँ चीड़ और देवदार जैसी थीं। और सब कुछ बर्फ जैसा ठंडा, राख की तरह धूसर था।

लेकिन अचानक मैं बर्फ की घाटी में गिर पड़ा। ऊपर-नीचे चारों ओर बर्फ जैसी ठंड और राख जैसा फीकापन था। फिर भी बिखरी बर्फ के ऊपर असंख्य लाल परछाइयाँ थीं जो मूँगे के जाल की तरह आपस में गुँथी हुई थीं। अपने पैर के नीचे देखा तो मुझे एक लपट दिखायी दी।

यह बुझी हुई आग थी। यह प्रज्वलित रूप में थी, लेकिन एकदम स्थिर, पूरी तरह जली हुई, जैसे मूँगे की शाखाएँ, जिनके सिरे पर काला धुँआ होता है और इस तरह झुलसी हुई दिखती हैं, जैसे अभी-अभी अग्निकुण्ड से निकाला गया हो। और इस तरह चारों ओर बर्फ के ऊपर प्रतिबिम्ब डालते हुए और वापस प्रतिबिम्बित होते हुए यह असंख्य परछाइयों में बदल गया है, जो बर्फ की घाटी को मूँगे की तरह लाल बना रहा है।

आहा!

जब मैं बच्चा था तो हमेशा द्रुतगामी जहाजों के पीछे जो प्रचण्ड झाग पैदा होते थे या दहकती हुई भट्ठी से जो लपटें उठती थीं, उन्हें मैं काफी पसन्द करता था। न केवल उन्हें निहारना अच्छा लगता था, बल्कि मैं उन्हें साफ-साफ देखने के लिए लालायित रहता था। अफसोस कि वे हमेशा रूप बदलते रहते थे और कभी भी एक नियत रूप में बने नहीं रहते थे। चाहे जितना भी टकटकी लगाये देखता, लेकिन मुझ पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ता था।

मृत लपट, अब आखिर मैंने तुम्हें पा लिया!

जब मैं बुझी हुई आग को नजदीक से जाँचने के लिए उठाया, तो इसके बर्फीलेपन ने मेरी ऊँगलियों को झुलसा दिया, लेकिन दर्द को बर्दाश्त करते हुए मैंने उसे जेब में रख लिया। पूरी घाटी देखते-देखते राख की तरह धूसर हो गयी। ठीक उसी समय मैं अचरज से सोचने लगा कि उस जगह को कैसे छोड़ा जाय।

मेरे शरीर से धुएँ का काला छल्ला लिपट रहा था जो ऊपर उठते हुए एक पतले सर्प जैसा दिख रहा था। अचानक हर तरफ लाल लपटें उठने लगीं और मुझे अग्निकुण्ड में घेरने

लगीं। नीचे देखने पर मैंने पाया कि मृत आग दुबारा जल रही थी, उसने मेरे कपड़ों को जला दिया और बर्फीली जमीन पर उड़ने लगी।

"अरे दोस्त!" उसने कहा। "तुमने मुझे अपनी गर्माहट से जगा दिया!"

मैंने तुरन्त उसका स्वागत किया और उसका नाम पूछा।

"मुझे आदमियों ने बर्फ की घाटी में त्याग दिया था," उसने मेरे सवाल को अनसुना करते हुए कहा। जिन लोगों ने मुझे त्यागा वे मर-खप गये। और मैं, मैं भी इस बर्फ में जमकर मर ही गयी। अगर तुमने मुझे गर्माहट नहीं दी होती और दुबारा मुझे जलाया नहीं होता तो मैं भी बहुत पहले ही खत्म हो गयी होती।"

"मुझे खुशी है कि तुमने मुझे जगा दिया। मैं भटक रही थी कि कैसे इस बर्फ की घाटी से निकल पाऊँ और मैं चाहूँगा कि तुम्हें भी अपने साथ ले चलूँ ताकि तुम जम न जाओ और हमेशा जलते रहो।"

"अरे नहीं! फिर तो मैं जलकर भस्म हो जाऊँगा।"

"अगर तुम भस्म हो गये तो मुझे दुःख होगा। इससे अच्छा तो यही है कि मैं तुम्हें यहीं छोड़ दूँ।"

"नहीं, नहीं! मैं जमकर मुर्दा हो जाऊँगा।"

"तब आखिर क्या किया जाय?"

"तुम्हारा क्या होगा?" मैंने पूछा।

"मैंने कहा नहीं, कि मैं इस बर्फ की घाटी को छोड़ दूँगी।"

"तब तो मेरा भी जलकर भस्म होना ही ठीक है।"

वह एक लाल पुच्छल तारे की तरह उछली और हम एक साथ घाटी से चल पड़े। अचानक एक बड़ी सी पत्थर की गाड़ी हमारे ऊपर से गुजरी और मैं उसके पहियों के नीचे कुचल गया और देखता हूँ कि वह गाड़ी बर्फ की घाटी में गिर गयी।

"अरे वाह! अब तुम कभी उस बुझी हुई आग से दुबारा नहीं मिल पाओगे।" यह बोलते हुए मैं खुशी से हँस पड़ा जैसे मैं इस बात से खुश हुआ कि ऐसा ही होना चाहिए।

अप्रैल 23, 1925

कुत्ते ने पलट कर कहा

सपने में क्या देखा कि मैं भिखारी जैसे फटे-चिटे कपड़ों में एक संकरी-सी गली में टहल रहा हूँ।

एक कुत्ता मेरे पीछे भौंकने लगा।

मैंने पीछे मुड़कर तिरस्कार से देखा और डाँटते हुए कहा-- हट! चुपकर! नीच चाटुकार!

उसने दाँत निपोरते हुए कहा-- "अरे नहीं! इस मामले में भला आदमी के आगे मेरी क्या हैसियत।"

"क्या कहा!" मुझे बहुत गुस्सा आया। मुझे लगा कि यह तो बहुत बड़ा अपमान है।

"मुझे बताते हुए शर्म आ रही है कि अब तक फर्क करना नहीं आया मुझे ताँबे और चाँदी में, रेशम और खद्दर में, अफसर और आम आदमी में, मालिक और गुलाम में..."

मैं मुड़ा और भाग खड़ा हुआ।

"जरा रुको तो! थोड़ी और गपशप हो जाय..." पीछे से उसने ऊँची आवाज में रुकने का आग्रह किया।

लेकिन मैं जितना तेज भाग सकता था, भागता गया, जब तक सपने से बाहर निकल कर अपने बिस्तर पर वापस नहीं आ गया।

अप्रैल 23, 1925

सुन्दर नरक जो गायब हो गया था

मैंने सपना देखा कि नरक के बगल में एक उजाड़ जगह पर बिस्तर में लेटा हूँ। सभी भूत-प्रेतों का गहरा लयबद्ध विलाप और उसमें घुली-मिली आग की लपटों की अनुगूँज, गर्म- होते तेल की खदबदाहट और लोहे के काँटों की टकराहट, यह सब आपस में मिलकर मदोन्मत कर देने वाली एक ऐसी विराट स्वर-संगति पैदा कर रहे थे जो तीनों लोक में नरक लोक की शान्ति का उद्घोष कर रही थी।

हमारे सामने एक विशाल आदमी आकर खड़ा हुआ, सुन्दर और सौम्य। उसका पूरा शरीर प्रकाश की दीप्ति से चमक रहा था, लेकिन मैं समझ गया कि यह शैतान है।

"यह हर चीज का अन्त है! हर चीज का अन्त! अभागे भूतों से उनका सुन्दर नरक छिन गया।" क्रोध और पीड़ा के साथ बोलते हुए वह मेरे बगल में बैठकर एक कहानी सुनाने लगा।

"यह तब की बात है जब स्वर्ग और धरती शहद के रंग के बने थे, जब शैतान ने ईश्वर को वश में कर लिया और चरम शक्ति हासिल कर ली। वह स्वर्ग, धरती और नरक पर काबिज हो गया। फिर वह नरक की जेल में आया और उसके बीच में बैठकर उसने सभी भूत-प्रेतों पर दीप्तिमान चमकीली रोशनी डाल दी।"

"काफी समय से नरक की उपेक्षा की गयी थी-- कँटेदार पेड़ अपनी आभा खो चुके थे, खौलते तेल के कड़ाह की खुदबुदाहट गायब हो गयी थी। उस दौरान विकट आग भी लपटों की जगह केवल थोड़ा सा नीला धुँआ देती थी और वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर अभी भी कुछ मैनड्रेक के फूल खिले थे, छोटे-छोटे, पीले और मनहूस। लेकिन इसमें अचरज की कोई बात नहीं थी, क्योंकि धरती भी तब तक भयानक रूप से जल चुकी थी और जाहिर है कि अपनी उर्वरता खो चुकी थी।

"ठंडे तेल और धीमी आँच वाली आग के बीच शैतान की रोशनी से जब भूत-प्रेतों की आँख खुली तो उन्होंनें नरक के छोटे-छोटे फूल देखे, जो बहुत ही बासी और मनहूस थे और वे बहुत ही सम्मोहित हो गये। अचानक उन्होंने आदमियों की दुनिया को याद किया और पता नहीं कितने वर्षो तक चिन्तन-मनन करने के बाद मानवता की ओर मुँह करके नरक की भर्त्सना करते हुए वे काफी जोर से चिल्लाये।

"आदमी ने शैतान से लड़कर जो अधिकार छीने थे उनके लिए उठ खड़े हुए। घन गर्जना से भी तीखी आवाज में होने वाली गड़गड़ाहट से तीनों लोक गूँज उठे। छल, कपट और धूर्ततापूर्ण चाल-फरेब के दम पर उसने शैतान को नरक छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। अन्तिम विजय के बाद नरक के द्वार पर मानव जाति का झंडा फहराया गया।

"भूत-प्रेत सभी मस्ती में झूम रहे थे कि तभी वहाँ आदमियों का दूत नरक के पुनर्गठन के लिए आ धमका। वह आदमी का प्रभुत्व धारण किये नरक के बीच में विराजमान हुआ और भूत-प्रेतों पर शासन करने लगा।

"जब भूत-प्रेतों ने नरक की भर्त्सना करते हुए एक बार फिर आवाज उठायी, तो उन्हें बागी करार दिया गया। इस अपराध के लिए उन्हें शास्वत नरक दण्ड की सजा मिली और उन्हें कँटीले झाड़ीदार पेड़ों में धकेल दिया गया।

"आदमी ने नरक पर अपनी चरम सत्ता थोप दी। उसका प्रभुत्व शैतान को भी मात देने वाला था। उसने पूरी व्यवस्था में फेरबदल किया और बैल के मुण्ड वाले पिशाच को नरक का प्रधान नियुक्त किया। उसने आग में घी डाला, तलवार पर्वत को और भी धारदार बनाया और पुरानी पतनशीलता को समाप्त करते हुए नरक का स्वरूप पूरी तरह बदल दिया।

"अचानक मैनड्रेक के फूल मुरझा गये। तेल के कड़ाहे फिर खदबदाने लगे, तलवार की धार फिर पहले की तरह ही तेज हो गयी, पहले की तरह ही आग की लपटें उठने लगीं और भूत-प्रेत पहले की तरह ही तड़पड़ाने और विलाप करने लगे, क्योंकि अब उन्हें खोये हुए नरक को लेकर पश्चाताप करने की फुर्सत ही नहीं थी।

"यह आदमी की सफलता थी, दुर्भाग्य था भूत-प्रेत का--

"दोस्त, मुझे लगता है कि तुम मुझ पर यकीन नहीं कर रहे हो। हाँ, आखिर तुम भी तो आदमी ही हो। मुझे दैत्यों और पिशाचों की तलाश करनी होगी--"

16 जून, 1925

राय जाहिर करने के बारे में

मैंने सपना देखा कि मैं प्राथमिक विद्यालय की एक कक्षा में था। एक लेख लिखने की तैयारी कर रहा था और मैंने शिक्षक से पूछा कि कोई राय जाहिर करनी हो तो कैसे करें।

"यह तो कठिन काम है।" अपने चश्में के बाहर से मेरी ओर निहारते हुए उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ--

"एक परिवार में जब बेटा पैदा हुआ, तो पूरे घराने में खुशी की लहर दौड़ गयी। जब वह बच्चा एक महीने का हो गया, तो वे लोग उसे मेहमानों को दिखाने के लिए बाहर ले आये। जाहिर है कि उन्हें उन लोगों से शुभकामनाओं की उम्मीद थी।

"एक ने कहा- 'यह बच्चा धनवान होगा।' उसे लोगों ने हृदय से धन्यवाद दिया।

"एक ने कहा- 'यह बच्चा बड़ा होकर अफसर बनेगा।' उसे भी जवाब में लोगों की प्रशंसा मिली।

"एक ने कहा- 'यह बच्चा मर जायेगा।' उसके बाद पूरे परिवार ने मिलकर उसकी कस के धुनाई की।

"बच्चा मरेगा, यह तो अवश्यंभावी है, जबकि वह धनवान होगा या अफसर बनेगा, ऐसा कहना झूठ भी हो सकता है। फिर भी झूठ की प्रशंसा की जाती है, जबकि अपरिहार्य सम्भावना के बारे में दिये गये वक्तव्य पर मार-पिटाई होती है। तुम..."

"मैं झूठी बात नहीं कहना चाहता श्रीमान और पिटना भी नहीं चाहता। तो मुझे क्या कहना चाहिए?"

"ऐसी स्थिति में कहो-- 'आ हाहा! जरा इस बच्चे को तो देखो! मेरी तरफ से इसे आ हाहा! मेरा मतलब आहाहा! हे, हे! हे, हे, हे, हे।

16 जून, 1925

मौत के बाद

मैंने सपना देखा कि मैं सड़क के किनारे मरा पड़ा हूँ।

मैं कहाँ था, उस जगह कैसे आया और मरा कैसे, यह सब एक रहस्य था। बहरहाल, जिस समय मुझे पता चला कि मैं मर गया हूँ, तभी से मैं उसी जगह पड़ा था।

मैंने खुदबुदी चिड़िया का कलरव सुना और फिर कौओं की काँव-काँव। हवा एकदम ताजा थी, हालाँकि उसमें मिट्टी की तीखी गंध समायी हुई थी, भोर होने ही वाली थी। मैंने अपनी आँखें खोलने की कोशिश की लेकिन मेरी पलकें हिल नहीं पायीं, मानों वे वहाँ हों ही नहीं। मैंने हाथ ऊपर उठाने की कोशिश की, तो फिर वही हाल।

मैंने अपने दिल में भय की एक टीस महसूस की। जब मैं जीवित था तो यह सोचकर मुझे काफी मजा आता था कि अगर आदमी की मौत केवल संवेदी तंत्र को लकवा मार जाना हो, जबकि उसकी संवेदना कायम रहे, तो यह पूरी तरह मर जाने से कहीं अधिक भयावह होगा। कौन कह सकता था कि मेरी भविष्यवाणी सच हो जायेगी या फिर इस सच्चाई का स्वाद मुझे खुद ही चखने को मिलेगा।

मैंने कदमों की आहट सुनी-- कोई पास से गुजर रहा था। किसी एकपहिये वाले ठेले ने मेरे सिर के पीछे से धक्का मारा। उसका भार शायद काफी अधिक था क्योंकि उसकी चरचराहट और किरकिराहट मेरी नाड़ियों में बेचैनी पैदा कर रही थी और मेरे दाँत किरकिराने लगे। फिर हर चीज मुझे लाल-लाल लगने लगी। जरूर सूरज उग गया होगा। निश्चय ही मैं पूरब की ओर मुँह किये था। हालाँकि इसका कोई मायने नहीं था। इनसानी आवाजों की बड़बड़ाहट-- उत्सुक दर्शक। उनके कदमों ने धूल का बादल उड़ाया जो सीधे मेरी नाक में घुसने लगा और मुझे छींकने की इच्छा हुई। मैं छींक पाने में असमर्थ था, हालाँकि मुझे बहुत मन कर रहा था।

फिर तो ढेर सारे कदमों की चाप सुनायी देने लगी। सबके सब मेरी बगल में आकर खड़े हो गये और फुसफुसाहट बढ़ने लगी। बहुत बड़ा मजमा लग गया। अचानक मैंने उत्कण्ठा महसूस की कि जरा सुनें तो कि वे क्या कह रहे हैं। लेकिन ठीक उसी समय मुझे याद आया कि कैसे मैं अपने जीवनकाल में अक्सर कहा करता था कि आलोचना से घबराने की कोई जरूरत नहीं। शायद मैं जो कहता था, उसे समझता नहीं था-- जैसे ही मैं मरा, मैंने अपने को ही धोखा दिया। लेकिन भले ही मैं उनकी बातें सुनता रहा, मैं किसी नतीजे तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि कोई भी इससे अधिक टिप्पणी नहीं कर रहा था--

"मर गया, अरे।..."

"अरे।..."

"अच्छा।..."

"मेरे प्यारे... बहुत बुरा..."

मुझे खुशी हुई कि इनमें से कोई भी आवाज जानी-पहचानी नहीं थी। वरना इनमें से कोई मेरे लिए शोक मनाता, तो कोई खुश होता। किसी के लिए भोजन के बाद की जाने वाली गपशप का मसाला मिल जाता और उसका कीमती समय बर्बाद होता और ये सभी बातें मुझे बहुत खराब लगतीं। अब चूँकि किसी ने मुझे देखा नहीं, इसलिए कोई प्रभावित नहीं होगा। अच्छा ही है, आखिर मैंने किसी का कोई नुकसान भी तो नहीं किया है न।

लेकिन तभी ऐसा लगा कि एक चींटी मेरी पीठ पर रेंगने लगी और मुझे खुजली होने लगी। चूँकि मैं हिल-डुल नहीं सकता था, मुझे इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नजर नहीं आया। आमतौर पर तो मेरे करवट बदलने से ही वह भाग जाती। अब एक दूसरी चींटी आकर मेरी जाँघ पर रेंगने लगी। ये क्या कर रही हो बेवकूफ चींटी।

हालत बद से बदतर होती गयी-- मेरे कानों में भनभनाहट हुई और एक मक्खी आकर मेरे गाल पर बैठ गयी। वह कुछ आगे बढ़ी और उड़कर नाक पर बैठ गयी और उसे चाटने लगी। "मैं कोई विख्यात आदमी नहीं हूँ महोदया," मैंने कातर भाव से सोचा। "आपके गपशप वाले कॉलम में लिखने के लिए मुझसे कुछ भी हासिल नहीं होने वाला..." लेकिन मैं बोल नहीं पाया। वह नाक के छोर से नीचे उतरी और अपनी चिपचिपी जीभ से मेरे होठों को चूमने लगी। मैंने सोचा कि कहीं यह प्यार का इजहार तो नहीं। कुछ और मक्खियाँ मेरी भौं पर आ कर जमा हो गयीं। इनके एक-एक कदम रेंगने से मेरे रौंगटे खड़े हो जाते। अब तो सारी हदें पार होती जा रही थीं।

अचानक हवा का एक झोंका आया, किसी चीज ने मुझे ऊपर तक ढक लिया और वे सब उड़ गयीं। मैंने सुना कि वे उड़ते-उड़ते कहती जा रही हैं-- "कितना दयनीय है।..."

मैं क्रोध से मरने-मरने को हो आया।

मुझे तब होश आया जब अचानक लकड़ी की कोई चीज धप से आकर जमीन पर गिरी और धरती को हिला गयी। मैं अपने ललाट पर पुआल की चटाई से बने निशान महसूस कर सकता था। फिर चटाई हट गयी और तत्काल मैंने फिर से सूरज की चिलचिलाती धूप महसूस की।

"ये यहीं क्यों मर रहा है?" मैंने किसी को कहते हुए सुना।

आवाज इतने करीब से आ रही थी कि बोलने वाला मेरे ऊपर जरूर झुका हुआ होगा। लेकिन कोई आदमी आखिर कहाँ मरे? मैं अक्सर सोचा करता था कि कोई आदमी

यह भले ही न चुन पाया हो कि इस धरती पर कहाँ रहे, लेकिन कम से कम वह ये तो चुन ही सकता है कि जहाँ उसका मन करे, वहाँ मरे। अब मैंने जाना कि ऐसा है नहीं और सबको खुश रखना सम्भव नहीं है। कितनी दयनीय स्थिति है कि मेरे पास कलम और कागज नहीं है, लेकिन अगर होता भी तो मैं लिख नहीं पाता और लिख भी पाता तो उस रचना को कहीं छपवा नहीं पाता। फिर तो इसे ऐसे ही गुजर जाने दें।

कुछ लोग मुझे उठाकर ले जाने के लिए आये, लेकिन मुझे पता नहीं कि वे कौन थे। म्यान के टकराने की आवाज से मैंने अन्दाज लगाया कि यहाँ भी पुलिस है, इस जगह जहाँ मुझे मरना नहीं चाहिए था। मुझे कई बार उलटा-पलटा गया, मैंने खुद को उठाये जाते और वापस रखे जाते महसूस किया, फिर एक ढक्कन बन्द किये जाने और कील ठोंकने की आवाज सुनायी दी लेकिन अचरज की बात यह कि उन्होंने सिर्फ दो ही कीलें ठोकी। क्या वे ताबूत में हमेशा सिर्फ दो ही कीलें इस्तेमाल करते हैं?

"इस समय मैं छः दीवारों के भीतर से दस्तक देता रहूँगा" - मैंने सोचा। "मैं एक कुँए में जकड़ दिया गया हूँ। सचमुच यह अन्त है। मेरे साथ यही सब होना था।..."

"यहाँ तो दमघोटू माहौल है," मैंने सोचा।

सच तो यह कि मैं पहले से कहीं अधिक शान्त था, हालाँकि मैं तय नहीं कर सकता था कि अभी मुझे दफनाया गया या नहीं। मेरा हाथ पुआल की चटाई से छू गया और मुझे महसूस हुआ कि इस तरह का कफन कोई खास बुरा नहीं है। मुझे दुःख था तो इस बात का कि मेरे लिए दानस्वरूप किसने इसकी कीमत अदा की है। लेकिन लानत है उन कमबख्तों को जिन्होंने मुझे ताबूत के अन्दर डाला। मेरी कमीज का एक कोना मेरी पीठ के नीचे दबा हुआ है, लेकिन मेरे लिए उन लोगों ने इतना भी नहीं किया कि उसे खींचकर सीधा कर दें और अब यह बहुत ही असुविधाजनक रूप में मुझसे चिपका हुआ है। क्या समझते हो कि मरा हुआ आदमी इतनी लापरवाही से किये गये तुम्हारे काम को महसूस ही नहीं कर पायेगा। हुँह।

लगता है कि मेरे शरीर का वजन जब मैं जिन्दा था, उससे कहीं ज्यादा भारी हो गया है। इसीलिए तो मेरी दबी हुई कमीज से मुझे आमतौर पर जितनी असुविधा होती, उससे कहीं ज्यादा महसूस हो रही है। फिर भी, मैंने सोचा कि या तो जल्दी ही मुझे इसका आदी हो जाना चाहिए या जल्दी ही सड़-गल जाना चाहिए, ताकि मुझे इससे ज्यादा परेशानी न उठानी पड़े। इस बीच मैं शान्तिपूर्वक प्राणायाम की मुद्रा में पड़ा रहा।

"आप कैसे हैं, महाशय? आप मर गये?"

आवाज काफी पहचानी हुई थी। जब मैंने आँखें खोली तो देखा कि बोगझाई बुक स्टोर का हरकरा था। मैंने पिछले बीस सालों से उसे देखा नहीं था, लेकिन वह बिल्कुल पहले जैसा ही था। मैंने अपने ताबूत की दीवारों की जाँच की- सचमुच वे बेहद भद्दी और

बिना पॉलिस किये हुए थीं। चिरान के किनारे तो बहुत ही खुरदरे थे।

"इसकी परवाह न करें, कोई फर्क नहीं पड़ता," उसने गहरे नीले रंग के कपड़े में बंधें एक पुलिन्दें को खोलते हुए कहा। "ये है आपके लिए गोंगियांग की रचना टिप्पणियों (बसन्त और पतझड़ के आख्यानों पर टिप्पणियाँ) का किंग साम्राज्य वाला संस्करण। यह जिया जिंग काल (1522-62) का है और इसके हाशिये काले रंग के हैं। इसे रख लीजिए। और यह..."

"तुम।" मैंने अचरज भरी निगाह से उसकी ओर देखा। "पागल हो क्या?" मैंने पूछा। "देख नहीं रहे हो, मैं यहाँ कैसी हालत में हूँ। किंग साम्राज्य वाला संस्करण लेकर मैं यहाँ क्या करूँगा?"

"इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, चिन्ता न करें।"

मैंने कुढ़ते हुए अपनी आँखें मूँद ली। कुछ देर तक वहाँ कोई आवाज नहीं हुई। निस्संदेह वह चला गया। लेकिन ऐसा लगा कि एक दूसरी चींटी मेरी गर्दन पर रेंगने लगी और अन्ततः मेरे चेहरे पर चली आयी, जहाँ वह मेरी आँखों के चारों और घूमने लगी।

मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कोई आदमी मौत के बाद भी अपने विचारों को बदल सकता है। अचानक किसी शक्ति ने मेरे दिल की शान्ति हर ली और मेरी आँखों के आगे कई स्वप्न तैरने लगे। कुछ दोस्तों ने हमें खुश रहने की शुभकामनाएँ दी थीं, कुछ दुश्मनों की चाहत थी कि मैं मिट जाऊँ। फिर भी न तो मैं खुश ही रहा और न ही मिट पाया, बल्कि दीन-हीन अवस्था में जीता रहा, दोस्तों और दुश्मनों की उम्मीदें पूरी किये बगैर। और अब मैं एक गायब होती परछाई की तरह मर गया और मेरे दुश्मनों को इसका पता भी नहीं चला कि उनको थोड़ी-सी खुशी भी दे पाऊँ, हालाँकि इसमें मेरा कुछ नहीं जाता...

मैंने उल्लासपूर्वक रोना चाहा। यह मेरी मौत के बाद पहले आँसू होते।

आखिरकार आँसू नहीं आये। मेरी आँखों के आगे एक चमक कौंध गयी और मैं उठ कर बैठ गया।

12 जुलाई, 1925

ऐसा योद्धा

एक ऐसा योद्धा होगा!

अच्छी तरह पॉलिश किया माउजर अपने कन्धे से लटकाये अफ्रिका वासियों की तरह लापरवाह नहीं और न ही स्वचालित पिस्तौल लिए चीनी हरे पताके वाली सेना की टुकड़ी की तरह बेजान (क्विंग साम्राज्य के दौरान हान सैनिकों की टुकड़ी के जो बहुत ही बेकार योद्धा होते थे, उन्हें अलग करने के लिए हरे पताके के साथ चलना होता था)। वह ऑक्साइड या रद्दी लोहे से बने अस्त्र पर भरोसा नहीं करता। खुद के सिवा उसके पास कुछ नहीं और हथियार के नाम पर बर्बरों द्वारा लहराये गये भालों के सिवा कुछ नहीं।

वह शून्यता के पथ पर चलता है जहाँ उससे मिलने वाला हर कोई एक ही ढंग से हाँ में हाँ मिलाता है। वह जानता है कि इस तरह से हामी भरना दुश्मन द्वारा बिना रक्तपात के हत्या करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला हथियार है, जिसके भार से कई योद्धा नष्ट हो गये। तोप के गोले की तरह यह किसी बहादुर की शक्ति को अप्रभावी बना देता है।

उनके सिर के ऊपर हर तरह के झण्डे और पताके लटके होते हैं। मानव प्रेमी, विद्वान, लेखक, वरिष्ट, युवा, कला प्रेमी, भद्र पुरुष... उसके नीचे हर प्रकार के सुन्दर नामों की कढ़ाई वाले सभी प्रकार के लबादे होते हैं-- विद्वता, नैतिकता, राष्ट्रीय संस्कृति, सार्वजनिक राय, तर्क, न्याय, प्राच्य सभ्यता....

लेकिन वह अपना भाला ऊपर उठाता है।

वे एक साथ अपनी वैधानिक शपथ लेते हैं कि उनका हृदय उनकी छाती के मध्य में है, जबकि दूसरे पुर्वागृहग्रस्त लोगों के मामले में ऐसा नहीं होता। वे अपनी छाती की पसलियों के द्वारा यह प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि वे खुद भी यह यकीन रखते हैं कि उनका हृदय उनकी छाती के केन्द्र में ही है।

लेकिन वह अपना भाला ऊपर उठाता है।

वह मुस्कुराता है और भाला बगल में फेंकता है और यह उनके हृदय को चीरते हुए निकल जाता है।

सभी क्षत-विक्षत होकर जमीन पर गिर पड़ते हैं, जहाँ केवल लबादा होता है, जिसमें कुछ नहीं होता। शून्यता बच गयी और उसने जीत हासिल कर ली क्योंकि वही है जो अपराधी हो गयी है जिसने मानव प्रेमी और बाकी बचे लोगों की हत्या की।

लेकिन वह अपना भाला ऊपर उठाता है।

वह लम्बे डग भरता हुआ शून्यता की पंक्ति को पार करता है और दुबारा उसी तरह से हाँ में हाँ मिलाना, वैसे ही पटके और लबादे देखता है।

लेकिन वह अपना भाला ऊपर उठाता है।

आखिर में वह बूढ़ा हो जाता है और बूढ़ापे के कारण शून्यता के पथ पर मर जाता है। सब के बावजूद वह कोई योद्धा नहीं है और शून्यता ही विजेता है।

ऐसी जगह युद्ध की पुकार सुनायी नहीं देती बल्कि शान्ति है।

शान्ति

लेकिन वह अपना भाला उठाता है।

14 दिसम्बर, 1925

चतुर आदमी, मूर्ख और गुलाम

गुलाम ने और कुछ नहीं किया, बस किसी आदमी की बाट जोहता रहा जिसके सामने वह अपना दुखड़ा रो सके। वह इतना ही कर सकता था और उसने यही किया।

"हुजूर!" वह दुःखी मन से रोने लगा। आँसू उसके गालों पर लुढ़कने लगे। "आप जानते हैं, मैं कुत्ते की जिन्दगी जी रहा हूँ। पूरे दिन मुझे एक बार भी खाने को नहीं मिल पाता। और कभी मिलता भी है तो सावाँ की लपसी, जिसे सूअर भी नहीं खा सकता। और वह भी एक छोटी कटोरी भर..."

"यह तो सचमुच बहुत बुरी बात है।" चतुर आदमी ने सहानुभूति जतायी।

है न?" उसकी आत्मा जाग उठी। "और मैं पूरे दिन, पूरी रात खटता रहता हूँ। भोर में मैं पानी लाता हूँ, दिन ढलने पर खाना पाता हूँ, सुबह-सुबह भागकर सन्देशा पहुँचाने जाता हूँ, शाम को गेहूँ पीसता हूँ, मौसम खुला हो तो कपड़े धोता हूँ, बारिश हो रही हो तो मालिक के पास छतरी थामे खड़ा रहता हूँ, जाड़े में अलाव जलाये रखता हूँ, गर्मी में मैं पँखा झलता रहता हूँ। आधी रात को मैं खुम्बी उबालता हूँ और अपने जुआ खेल रहे मालिक का इन्तजार करता हूँ लेकिन मुझे कभी कोई बख्शीस नहीं मिलती, कभी-कभी चमड़े की पट्टी से पिटाई..."

"मेरे प्यारे..." चतुर आदमी ने आह भरी। उसकी आँखें लाल हो रही थीं, जैसे उनसे आँसू ढरकने ही वाले हों।

"मैं इस तरह दिन नहीं काट पाऊँगा हुजूर। मुझे कोई रास्ता देखना पड़ेगा। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मुझे यकीन है कि हालात बेहतर होंगे..."

"क्या आप ऐसा मानते हैं? मुझे भी पक्का यकीन है। लेकिन आपसे अपनी परेशानी बताकर और आपसे हमदर्दी और हौसला पाकर मेरे मन का बोझ काफी कम हो गया। लगता है कि दुनिया में अभी भी इन्साफ बचा हुआ है।"

हालाँकि कुछ दिनों बाद वह फिर हताशा में डूब गया और उसे कोई और मिल गया जिसके आगे वह अपना दुखड़ा रो सके।

"हुजूर!" वह आँसू बहाते हुए चिल्लाया। "आप जानते हैं, मैं जिस जगह रहता हूँ, वह सुअरवाड़े से भी घटिया है। हमारा मालिक हमें आदमी नहीं समझता, वह अपने कुत्ते को मुझसे हजार गुना ज्यादा अच्छा मानता है..."

"उसे मटियामेट कर दो!" दूसरा आदमी इतनी जोरदार आवाज में बोला कि गुलाम चौंक गया। वह दूसरा आदमी मूर्ख था।

"जिस जगह मैं रहता हूँ, वह एक कमरे की टूटी-फूटी झोपड़ी है, सीलन भरी, ठंडी और खटमलों से पटी पड़ी। जैसे ही मैं सोने के लिए लेटता हूँ, वे मुझ पर टूट पड़ते हैं। उस जगह बदबू आती है और एक भी खिड़की नहीं है..."

"तुम अपने मालिक से खिड़की लगाने के लिए नहीं कह सकते?"

"मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ हुजूर?"

"अच्छा, चलो दिखाओ कहाँ है वह।"

मूर्ख उस गुलाम के पीछे-पीछे उसकी झोपड़ी की तरफ चल पड़ा और वहाँ पहुँचते ही तड़ातड़ मिट्टी की दीवार तोड़ने लगा।

"ये क्या कर रहे हैं हुजूर?" गुलाम भयभीत था।

"मैं तुम्हारे लिए एक खिड़की खोल रहा हूँ।"

"यह ठीक नहीं होगा! मालिक मुझसे गाली-गलौज करेगा।"

"करने दो!" मूर्ख दीवार तोड़ने में लगा रहा।

"अरे बचाओ! एक डाकू मेरा घर तोड़ रहा है! जल्दी आओ! वह दीवार ढहा देगा! "चिल्लाते और सिसकी लेते हुए गुलाम पागल की तरह जमीन पर लोटने लगा। गुलामों की एक टोली आयी और उसने उस मूर्ख को वहाँ से खदेड़ दिया। चीख-चिल्लाहट सुनकर सबसे आखिर में गुलामों का मालिक भी वहाँ आ गया।

"एक डाकू हमारे मकान को तोड़ने की कोशिश कर रहा था। मैंने सबसे पहले आवाज लगायी और हम सबने मिलकर उसे भगा दिया।" गुलाम ने आदर के साथ और विजय भाव से कहा।

"बहुत अच्छा किया।" मालिक ने उसकी तारीफ की।

उस दिन कई लोग उससे हाल-चाल पूछने आये जिनमें वह चतुर आदमी भी था।

"हुजूर, मैंने खुद को काम लायक साबित किया तो मालिक ने मेरी तारीफ की। जब आपने उस दिन कहा था कि हालात बेहतर होंगे, तो सचमुच आप बहुत आगे की सोचकर कह रहे थे!" वह बड़ी उम्मीद और खुशी से बोला।

"ये अच्छा हुआ..." चतुर आदमी ने जवाब दिया और वह काफी खुश लग रहा था।

26 दिसम्बर 1925

चित्तीदार पत्ती

लैम्प की रोशनी में सातुला (13वीं सदी के युवान साम्राज्य का मंगोल कवि) की कविताएँ पढ़ते हुए उस किताब में दबी, एक सूखी मैपल की पत्ती मिली।

इसने मुझे पिछले साल के गुजरे पतझड़ की याद दिला दी। एक रात घना कोहरा था और ज्यादातर पेड़ों की पत्तियाँ झड़ चुकी थीं, जबकि मेरे बागीचे का एक मैपल गहरे लाल रंग का हो गया था। मैंने पेड़ का चक्कर लगाया ताकि उन पत्तियों को अच्छी तरह देख सकूँ, जिन्हें मैं उस वक्त नहीं देख पाया था जब वे हरी थीं। सारी की सारी पत्तियाँ लाल नहीं हुई थीं, बल्कि अधिकतर हल्के बैंगनी रंग की थीं और कुछ पर तो अभी भी गाढ़े लाल रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे हरे रंग के धब्बे थे। उनमें से एक पत्ती ऐसी थी जिसमें किसी कीड़े ने छेद बना दिया था और ऐसा लगता था जैसे रंग-बिरंगे लाल, पीले और हरे धब्बों के बीच काली किनारी वाले छेद से वह पत्ती आपको अपनी चमकीली आँखों से घूर रही हो।

"यह पत्ती चित्तीदार हो गयी है।" मैंने सोचा।

इसीलिए मैंने उसे तोड़कर उस किताब के भीतर रख दिया, जिसे उसी दिन खरीदा था। मेरे ख्याल से मुझे उम्मीद थी कि टूटकर गिरने से पहले ही मैंने उसकी चित्तीदार बहुरंगी छटा को कुछ समय के लिए सुरक्षित रख लिया था, जिससे वह बाकी पत्तियों के साथ ही डाली से बिछड़कर उड़ती हुई दूर न चली जाय।

लेकिन आज की रात यह पीली और चिकनी होकर मेरी निगाहों के आगे पड़ी है, इसकी आँखों में पिछले साल जैसी चमक नहीं है। कुछ और साल बीतने पर, जब इसके पहलेवाले रंग मेरी यादों से मिट जाते तो शायद मैं यह भी भूल जाता कि मैंने इसे किताब में क्यों रखा था। ऐसा लगता है कि चित्तीदार पत्तियाँ जो झड़ने-झड़ने को हों, उनकी रंग-बिरंगी आभा, हमारी देख-रेख में सिर्फ कुछ ही समय तक टिकी रह सकती है, हरियाली कायम रखने की तो बात ही छोड़िए।

मैं अपनी खिड़की से देख रहा हूँ कि जिन पेड़ों ने जाड़े को अच्छी तरह झेल लिया है वे अब तक अपनी पत्तियाँ गँवाकर नंगे हो चुके हैं, यही हाल मैपल का भी है। इस साल पतझड़ के अन्त में भी शायद पिछले साल की तरह ही चित्तीदार पत्तियाँ रही होंगी, लेकिन अफसोस की बात यह कि इस साल पतझड़ की रंगत का मजा लेने के लिए मेरे पास समय नहीं था।

26 दिसम्बर 1925

खून के धुँधले धब्बों के बीच

(कुछ जो मर गये, कुछ जो जीवित हैं और कुछ जो अभी अजन्मे हैं, उन सब की याद में।)*

आज के दौर में सृजनहार भी दिल का कमजोर है। छुपे तौर पर, वही स्वर्ग और धरती को बदलने की स्थिति तैयार करता है, लेकिन इस दुनिया को तबाह करने की हिम्मत नहीं करता। छुपे तौर पर, वह जीवित प्राणियों के मरने का उपाय रचता है, लेकिन उन मुर्दा शरीरों की हिफाजत करने का साहस उसमें नहीं है। छुपे तौर पर, वह लोगों के खून बहाने का उपाय करता है, लेकिन उसमें रस के धब्बों को हमेशा तरोताजा रखने की हिम्मत नहीं। छुपे तौर पर, वह मानवता के दुःख-भोग की परिस्थिति तैयार करता है, लेकिन उसमें हिम्मत नहीं कि उन्हें इन तकलीफों को हमेशा याद रखने की इजाजत दे।

वह अपने ही जैसा काम करता है, कमजोर दिल वाले मनुष्यों को पैदा करता है, सुनसान और खण्डहर हो गये मकबरों का इस्तेमाल धनी लोगों के महल बनाने में करता है, दर्द और खून के धब्बों को हल्का करने में समय लगाता है, हर रोज हल्की मिठास वाली कड़वी शराब का एक प्याला भरता है... न ज्यादा, न कम... हल्का नशा चढ़ाता है। मानवता को यह प्याला इसलिए देता है ताकि जो लोग उसे पियें वे रोयें और गायें, होश में भी लगें और मदहोश भी, सचेतन भी और अचेतन भी, ऐसा लगे कि वे जीना भी चाहते हैं और मरना भी चाहते हैं। उसे सभी प्राणियों में जीने की इच्छा पैदा करना जरूरी है। अभी उसमें इतनी हिम्मत नहीं कि मानवता को तबाह कर दे।

कुछ खाली पड़े खण्डहर और कुछ एक सुनसान मकबरे इस धरती पर यहाँ-वहाँ छितराये हुए हैं, धुँधले खून के धब्बों में दमकते हैं और वहाँ इनसान अपनी अस्पष्ट पीड़ा और तकलीफ तथा साथ-साथ दूसरों की पीड़ा का भी फल भोगते हैं। वे इसका यह सोचकर तिरस्कार नहीं करते कि कुछ नहीं से तो कुछ भी बेहतर है और वे इस तरह पीड़ा और तकलीफ को भोगना सही ठहराने के लिए अपने आपको "स्वर्ग के शिकार" कहते हैं।

* यह 18 मार्च की उस धरना के बाद लिखी गयी थी, जब उत्तरी युद्ध सरदार दुआन किरुई ने बीजिंग में जापानी, ब्रिटिश और अमरीकी साम्राज्यवादियों के उकसावे के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे छात्रों और शान्तिपूर्ण नागरिकों पर गोली चलाने के लिए पुलिस को आदेश दिया था। सैंतालिस लोग मारे गये थे और डेढ़ सौ लोग घायल हुए थे।

चुप्पी के साथ वे नयी पीड़ा और तकलीफ, नयी लाचारी का इन्तजार करते हैं जो उन्हें भयभीत कर देता है, फिर भी जिन्हें पाने के लिए वे लालायित रहते हैं।

मानवता के बीच से एक विद्रोही योद्धा उठ खड़ा होता है, जो सीधे तनकर अतीत और वर्तमान के सभी खाली पड़े खण्डहरों और सुनसान मकबरों पर नजर डालता है। वह सभी तीखी और अनन्त पीड़ाओं को याद करता है, वह खून के चकत्ते की चिपचिपाहट का पूरी तरह सामना करता है, जो कुछ भी जीवित है और जो कुछ भी मृत है और साथ ही साथ जो जन्म ले रहा है और जिसे जन्म लेना है, उन सबको वह समझता है। वह सृजनहार के खेल-तमाशे पर निगाह डालता है। और वह दुबारा शुरुआत करने के लिए उठ खड़ा होगा या पूरी मानवता को, सृजनहार की इन वफादार प्रजाओं को तबाह कर देगा।

कमजोर दिल सृजनहार, शर्म से खुद को छिपा लेता है। तब स्वर्ग और धरती उस योद्धा की निगाह में अपना रंग बदल लेते हैं।

8 अप्रैल 1926

जागृति

हर सुबह जिस तरह बच्चे स्कूल जाते हैं, ठीक उसी तरह बमबारी के मिशन पर निकले हवाई जहाज बीजिंग के ऊपर मँडराते हैं।* और हर बार जब मैं उनके इंजनों को हवा पर हमला करते सुनता हूँ तो मैं एक हल्के तनाव का अनुभव करता हूँ, मानों मैं मौत के आक्रमण को देख रहा हूँ, हालाँकि यह जीवन के अस्तित्व की मेरी चेतना को बढ़ा देता है।

एक या दो धीमे धमाके के बाद हवाई जहाज थोड़ी देर आसपास मँडराते और फिर धीरे-धीरे गायब हो जाते। कुछ लोग हताहत होते, लेकिन दुनिया पहले से भी अधिक शान्त महसूस होती। खिड़की के बाहर पोपलर की कोमल पत्तियाँ सूरज की किरणों से गहरी सुनहरी रंग में जगमगाती, फूलों से लदे आड़ू के पेड़ों की आभा कल से कहीं अधिक भव्य लगती। जब मैंने अपने बिस्तर पर चारों ओर फैले अखबारों को समेट दिया और पिछली रात मेज पर जमी हल्की भूरी धूल झाड़ दी, तब मेरा छोटा, चौकोर अध्ययन कक्ष इस विवरण के अनुरूप लगने लगा... "चमकीली खिड़की और साफ-सुथरी मेज।"

किसी ना किसी वजह से मैंने युवा लेखकों की पांडुलिपियों का सम्पादन शुरू किया, जो यहाँ जमा हो गयी थीं। उनमें से हर एक को पढ़ना चाहता हूँ। मैं उन्हें क्रमवार पढ़ता हूँ और उन नौजवान लोगों की भावनाएँ मेरे सामने उजागर होने लगती हैं, जो सच्चाई पर मुलम्मा चढ़ाने से नफरत करते हैं। वे बहुत अच्छे हैं, उनमें समन्वय की भावना है, लेकिन अफसोस! वे बहुत दुःखी हैं! वे तकलीफ से कराहते हैं, गुस्सा करते हैं और आखिर में असभ्य भाषा का प्रयोग करते हैं, मेरे प्यारे नौजवान।

उनकी भावना हवा और धूल के प्रहार से कठोर हो गयी है, क्योंकि उनमें मनुष्य की भावना है, जिस भावना को मैं प्यार करता हूँ। मैं उस कठोरता को खुशी-खुशी चूम लूँगा जो खून से लथपथ है, लेकिन उसका कोई आकार कोई रंग नहीं। रमणीय, सुविख्यात फुलवारी जो दुर्लभ फूलों से आच्छादित है उनमें शर्मीली और गुलाबी गालों वाली लड़कियाँ लापरवाही से समय काट रही होती हैं कि तभी जाँघिल पंछी तीखी आवाज में बोलता है और गहरे सफेद बादल उमड़ आते हैं... यह सब बहुत ही सम्मोहक है लेकिन मैं भूल नहीं सकता कि मैं पुरुषों की दुनिया में जी रहा हूँ।

---

* 1926 के अप्रैल महीने में जब जनरल फेंग युशियांग उत्तरी युद्ध सरदारों झांग जुओलीन और लि जिंगलिन से लड़ाई लड़ रहा था, तब युद्ध सरदारों के हवाई जहाज कई बार बीजिंग पर बमबारी के लिए आते थे।

और यह अचानक मुझे एक घटना की याद दिला देता है... दो या तीन साल पहले, मैं बीजिंग विश्वविद्यालय के स्टाफ रूम में था, तभी एक छात्र वहाँ आया, जिसे मैं जानता नहीं था। उसने मेरे हाथ में एक लिफाफा पकड़ाया और बिना कुछ बोले ही चला गया। जब मैंने उसे खोला तो उसमें *लघु तृण* * पत्रिका की एक प्रति थी। उसने एक भी शब्द नहीं कहा, लेकिन कितना बोलता हुआ मौन और कितना बहुमूल्य उपहार था वह! मुझे दुःख है कि *लघु तृण* पत्रिका अब नहीं निकल रही है। लगता है कि इसने केवल *अवमंदित घंटा*** पत्रिका की पूर्व पीठिका तैयार करने में भूमिका निभायी थी। और *अवमंदित घंटा* मानव सागर के तापघर में हवा की कंदराओं और धूल की गर्त में अकेला बज रहा है।

जंगली भँटकटैया भले ही कुचलकर सूख गया सा लगता हो, लेकिन उस पर अभी भी एक नन्हा फूल खिला हुआ है। मुझे याद आ रहा है कि तोल्सतोय इससे कितना अभिभूत हो गये थे, किस तरह इस दुष्ट ने उन्हें एक कहानी लिखने के लिए बाध्य किया था। निश्चय ही, जब बंजर रेगिस्तान के पौधे अपनी जड़ों को जमीन के नीचे काफी गहराई में पानी सोखने के लिए बेतहाशा बढ़ाते जाते हैं और मरकट का एक जंगल बना देते हैं, तो वे अपने बचाव की ही लड़ाई लड़ रहे होते हैं। फिर भी थके हुए, धूप से झुलसे राहगीरों का हृदय उस दृश्य को देखकर उछल पड़ता, क्योंकि वे समझते हैं कि वे एक अस्थायी विश्राम स्थल पर पहुँच गये। वास्तव में यह गहरी कृतज्ञता और उदासी को जन्म देता है।

पाठकों को सम्बोधन के स्थान पर "बिना शीर्षक" नाम से प्रकाशित *अवमंदित घंटा* का सम्पादकीय कहता है--

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा समाज एक रेगिस्तान है। अगर वास्तव में ऐसा होता, तो भले ही यह कितना भी निर्जन होता, इससे आप को शान्ति मिलनी चाहिए थी, भले ही यह एकांत होता लेकिन यह आपको अनन्तता का बोध कराता। यह इतना अव्यवस्थित, विशादपूर्ण और सबसे बढ़कर इतना परिवर्तन से भरा नहीं होता जैसा अभी है।

हाँ, युवा लोगों की भावनाएँ मेरे आगे प्रकट हुई हैं। वे कठोर हो चुकी हैं या होने वाली हैं। लेकिन मैं इन भावनाओं को पसन्द करता हूँ जो चुपचाप दिखती हैं और दुःख सहती हैं, क्योंकि ये मुझे जता देती हैं कि मैं आदमियों की दुनिया में हूँ-- मैं आदमियों के बीच रह रहा हूँ।

मैं अभी तक सम्पादन कर रहा हूँ जबकि सूरज डूब चुका है और अब मैंने लैम्प जला ली है। सभी तरह के नौजवान मेरी आँखों के आगे से गुजरते हैं, हालाँकि मेरे इर्दगिर्द

---

* साहित्यिक त्रैमासिक जिसे 1924 में युवा लेखकों ने शुरू किया था।

** 1925 में शुरू हुआ साहित्यिक साप्ताहिक।

धुँधलके के सिवा कुछ नहीं है। थककर मैं एक सिगरेट जलाता हूँ, चुपचाप अपनी आँखें मूँदकर असीम विचारों में खो जाता हूँ और एक लम्बा सपना देखता हूँ। एक आरम्भ के साथ मैं जागता हूँ। चारों ओर अभी भी धुँधलका है। सिगरेट का धुँआ कमरे की स्थिर हवा में गर्मी के शान्त आकाश में उमड़ते बादलों के गुबार की तरह ऊपर उठता है और धीरे-धीरे आकारों में बदल जाता है जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं।

10 अप्रेल 1926